गीत
गरिमा

प्रकाशन विवरण

गीत-गरिमा

मूल्य ४५/-

आवरण सज्जा—सोना गोपाल

मुद्रक—

(१) वीना प्रिंटिंग प्रेस
कीटगंज, इलाहाबाद

(२) श्री विष्णु आर्ट प्रेस, इलाहाबाद

(३) वीनस प्रिंटर्स, इलाहाबाद

प्रकाशक—

पारिजात प्रकाशन

३४१, बहादुरगंज (मोती पार्क), दूरभाष ५२,६०६
इलाहाबाद-३

गीत गरिमा

जीवन के विभिन्न परिवेशों से सम्पृक्त

६० गेय गीत

कैलाश कल्पित

रैजात प्रकाश

इलाहाबाद

यह गीत संकलन
चित्रकार मित्र राम विलास गुप्त,
हिन्दी के अनन्य सेवक जगन्नाथ जी (दिल्ली)
डा० कैलाश नाथ पाण्डेय (बम्बई) के साथ ही
समकालीन अनुज कवि—

अंजनी कुमार दुर्गेश
विष्णु कुमार त्रिपाठी 'राकेश' (लखनऊ)
राजाराम शुक्ल
बुद्धिसेन शर्मा
अमरनाथ श्रीवास्तव
वेद प्रकाश द्विवेदी 'प्रकाश' (फैजाबाद)
विजय लक्ष्मी 'विभा'
पन्नालाल गुप्त 'मानस'
चक्रधर 'नलिन' (रायबरेली)
रामलखन शुक्ल
डा० संत कुमार
कैलाश गौतम
एहतराम इस्लाम
बाबूलाल सुमन
एवं
प्रद्युम्न नाथ तिवारी 'करुणेश'

को

सस्नेह समर्पित

कैलाश कल्पित

अनुक्रम

अभिमन्त्रित गीत

प्यार और प्रणय के गीत

व्यथा और वियोग के गीत

श्रद्धा के गीत

स्नेह-सौरभ के गीत

प्रतीक्षा

●

ब आएगा कंत हमारा ?

मग लखते बीता दिन सारा
डूबा सूरज निकला तारा
मन के नभ पर व्याप्त अमावस
कब दीखेगा चाँद हमारा ?

कब आएगा कंत हमारा ?

फागुन आते टेसू फूले
'बैसाखी', पर लगे टिकोरे
जेठ चढ़े पर महुवा महका
बदल गया है मौसम सारा ।

कब आएगा कन्त हमारा ?

सावन आया, बादल आए
दामिन अभिसारण हित लाए
सखियाँ झूले झूल रही हैं
मेरा ही मन है मुरझाया

कब आयेगा कंत हमारा ?

बूँद झरी तो खिली केतकी
ताल तलैया झिल्ली बोली
चकवी के घर चकवा आया
चढ़ी अटा पर चम्पा-बेली
बौरी-बौरी ढूढ़ रही मैं,
कहाँ छिपा है कंत हमारा

कब आएगा कंत हमारा ?

प्राक्कथन

•

विश्व के मनीषियों ने काव्य की व्याख्या तरह-तरह से की है।

'शैली' कहता है जो सौन्दर्य संसार में व्याप्त होते हुए भी दृष्टिगत नहीं होता, उसका दर्शन कविता कराती है।

'जॉन रस्किन' कल्पना को कविता का प्राण तत्व बनाता हुआ उसमें मधुर उच्छ्वास की पृष्ठिभूमि तलाशता है।

'मैथ्यू आर्नल्ड' कविता को जीवन की आलोचना मानते हुए जीवन-सौन्दर्य के घाटों की तलाश मानता है।

'हडसन' मानव जीवन के अस्तित्व को कविता से जोड़ता है और काव्य के अस्तित्व को मानव से।

चिन्तन के मनीषी 'अज्ञात' ने कहा है—फूलों की पंखुड़ी अपने आप झर कर यदि उद्यान में गिरती है तो उसके गिरने की प्रतिध्वनि कविता में ही सुनाई दे सकती है।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय ने कविता की व्याख्या करते हुए कहा—कविता वास्तव में हृदय का उच्छ्वास, अथवा आनन्दांबुधि-विलोड़ित हृत्तन्त्री के मधुर नाद का शाब्दिक विकास है।

डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है—आत्मा की गूढ़ और छिपी सौन्दर्य राशि की भावना के प्रकाश से प्रकाशित हो उठना ही कविता है।

कवि, आलोचक और कविता में बौद्धिक रस तथा आलोचना में वस्तुवाद के प्रथम खोजी डा० रामप्रसाद मिश्र ने कविता को जहाँ आत्मा की वाणी, भाव की छवि और अनुभूति की रसना माना है, वहीं किसी

दुर्दमनीय मनोभाव का प्रातिभ अभिव्यक्ति को भी कविता का सम्बोधन दिया है और काव्य का छन्दबद्ध होना काव्य की अनिवार्यता नहीं माना है।

इधर नई कविता के प्रादुर्भाव से काव्य के नए प्रतिमान तथा उसकी कुछ नई व्याख्याएँ भी प्रस्तुत की गई हैं, किन्तु इस काव्य संकलन में चूँकि मैं ने अपने गीति काव्य को प्रश्रय दिया है अतः गीति काव्य के इत-वृत्त में बात करना चाहूँगा।

महादेवी वर्मा ने गीति-काव्य को आत्मा का संगीत कहा है और आलोचक प्रवर डा० नगेन्द्र ने इसे 'वाणी का सबसे तरल रूप' कहा है।

सृजन के क्षणों का मेरा अनुभव है कि कवि गीतात्मक काव्य के सृजन-क्षणों में कैवल्य प्राप्त करता है और हमारे वेद सम्भवतः इसीलिये छंदों के चरणों पर गतिमान होते हैं। हमारे ऋषि सृजन से कैवल्य प्राप्त करना चाहते थे।

आदि कवि वाल्मीकि की करुणा सर्वप्रथम छंद-काव्य का ही अंश बनकर प्रस्फुटित हुई, अतः यह कहना उचित होगा कि गीतात्मक काव्य ही प्रकृति-प्रदत्त आत्मा का स्वर है जो एक वरदान स्वरूप मनुष्य-मात्र को मिला है।

मनुष्य, जीवन के भिन्न-भिन्न क्षणों में गात्र-जन्य अंतः सलिला की विभिन्न धाराओं से आप्लावित होता रहता है इसलिये उसकी अनुभूतियाँ अलग-अलग क्षणों में अलग-अलग परिवेश के बिम्ब प्रस्तुत करती हैं। मैंने अपनी पैंसठ साला आयु में जवानी से लेकर बुढ़ापे तक एक सामान्य मानव की तरह गृहाश्रमी जीवन सपत्नीक और पत्नीविहीन दोनों स्थितियों से भरपूर जुड़कर विभिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ संजोई हैं और इन अनुभूतियों को मोटे रूप से कुछ खण्डों में बांट कर इस संग्रह में क्रमवार प्रस्तुत कर दिया है।

इन खण्डों में सर्वाधिक गीत 'प्यार और प्रणय' खण्ड में हैं, अतः इस नाज़ुक विषय पर कुछ विस्तार से लिखना चाहता हूँ।

समस्त प्राणी-जगत की रागात्मकता प्रणय से निःसृत है। प्रणय की अनुभूति प्रकृति का स्वार्थ है फलतः प्रत्येक मानव जीवन में कुछ वे क्षण आते हैं जब वह स्पंदित होकर या तो किसी पर मोहित होता है अथवा किसी को विमोहित करने का उपक्रम करता है, कभी-कभी किसी विशेष आनन्द

मे डूबकर कोई राग अलापने लगता है। इस राग अलापने का एक अंग काव्य का सृजन है जो कवि/कवयित्री द्वारा ही सम्भावित होता है।

काव्य की व्याख्या में ऊपर कहा गया है कि हृदय को पकड़ने की जो क्षमता छंद-बद्ध काव्य के पास है वह कविता के किसी अन्य रूप में सम्भाव्य नहीं होती, और जब यह काव्य प्रणयात्मकता से संश्लिष्ट हो जाता है तो उसके प्रभाव की व्यापकता सर्वाधिक बढ़ जाती है। मिलन, मिलन की कामना अथवा बिछोह के क्षणों को जब भाषा का अलंकरण प्राप्त होता है तो हृदय-कुसुम का पराग अनायास महक उठता है। आप कालिदास के पूर्व सृजन 'मेघदूत' पढ़े अथवा उनका उत्तरकालीन काव्य 'कुमार संभव' दोनों में शृङ्गार का ही अलंकारात्मक उद्दाम, गतिमान-छंद की गरिमा से अपने श्रेष्ठतम् स्वरूप को प्राप्त हुआ है।

आज के जीवन की जटिलता ने शृङ्गार की लौकिक अनुभूति को जड़ता प्रदान कर दी है, अतः इस युग में शृङ्गार और प्रणय पर काव्य-सृजन करने वाला व्यक्ति (कम से कम हिन्दी में) नम्बर दो का कवि गिना जाता है, जब कि जीवन का यथार्थ यह है कि बड़ा से बड़ा पण्डित अथवा बौद्धिकता ओढ़ने वाला भी इन मानवीय अनुभूतियों से बचकर नहीं निकल पाता।

आज कल विदेशी राजनीतिक चिन्तन के प्रभाव में कविता को वर्गवादी-संघर्ष का अस्त्र बना लिया गया है, जब कि कविता की मूल प्रवृत्ति लड़ाई लड़ना नहीं, हृदय को जोड़ना है। कविता ने जब से वर्गवादी संघर्ष की लड़ाई लड़ना शुरू की वह स्वयं टूटती गई है। उसके छंद टूटे हैं। मै भी युग के इस प्रभाव से बच नहीं पाया अतः 'अनुभूतियों की अजन्ता' और 'आग लगा दो, की अधिकतर कविताएँ नई कविता के तेवर की ही हैं, फिर भी मेरा यह मानना है कि कविता का मूल तत्त्व है रागात्मकता, इसीलिये सूरदास जैसे भक्त कवि भी लिखते हैं—

पिया बिन साँपिन कारी रात
कबहुँ जामिनी होत जुन्हैया
डसि उल्टी हुई जात।

मीराबाई के गीतों की उन्मुक्तता को यदि 'भगवान' श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व से प्रथक कर किसी सामान्य नायक से जोड़ दिया जाय तो वे गीत अधिकतर लौकिक प्रणय निवेदन में परिणत हो जायेंगे। हाँ महादेवी वर्मा के रहस्य-

वादी काव्य के रहस्य को मैं नहीं समझ पाया इसलिये उस पर कुछ नहीं कहूँगा।

कविवर जयशंकर 'प्रसाद' की रसज्ञता के सम्बन्ध में एक संस्मरण है कि उनके संगीतज्ञ-मित्र मुंशी अजमेरी ने जब दादरे की ये पंक्ति उनके पास समस्या पूर्ति के लिये भेजी—

पी लई राजा, तुम्हारे सँग भँगिया, तो उन्होंने इसकी सम्पूर्ति इन पंक्तियों में की—

'ना जानूँ कैसे सारी सरकि गई,
ना जानूँ कैसे मसकि गई अँगिया।'

पंत जैसे शालीन कवि ने, जिन्होंने आ जीवन आधिकारिक रूप में किसी नारी की बाँह नहीं पकड़ी, अपने हृदय की सहज तरलता को यूँ लिखा—

'बाले! तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन'

कवि हरिवंश राय 'बच्चन' तो शृङ्गार और प्रणय के स्तम्भ हैं। उन्होंने अपनी आयु के छठे दशक तक मुख्य रूप से शृङ्गार और प्रणय के ही गीत लिखे। बच्चन की अनुभूति में नारी अमृततत्त्व को पहुँच गई, यथा—

जगत-घट को विष से कर पूर्ण
किया जिन हाथों ने तैयार
लगाया उसके मुख पर नारि
तुम्हारे अधरों का मधु-सार

नहीं तो कब का देता तोड़, पुरुष, घट यह ठोकर को मार,
इसी मधु का लेने को स्वाद, हलाहल पी जाता संसार

बच्चन जी के साथ इसी क्रम में हम नरेन्द्र शर्मा जी का नाम भी ले सकते हैं। उन्होंने अपने यौवन-काल में कुछ अविस्मरणीय प्रणय गीत लिखे हैं। उदाहरण के लिये काव्य संग्रह 'प्रभात-फेरी' की ये पंक्तियाँ देखें—

प्रिय अभी मधुराधर चुम्बन,
गात-गात गूँथे आलिगन।
सुने अभी अभिलाषी अन्तर,
मृदुल उरोजों को मृदु कम्पन।

इसी शृंखला में शिवमंगल सिंह 'सुमन', अंचल, नैपाली, नीरज, सोम-ठाकुर, क्षेम, गिरिजा कुमार माथुर (नई कविता की धारा में बहने के पूर्व), रूप नारायण त्रिपाठी, शम्भू नाथ सिंह और रमानाथ अवस्थी आदि अनेक कवि आते हैं जिन्होंने अपने गीति काव्य के सृजन में प्यार और प्रणय से परहेज नहीं किया।

यथार्थ यह है कि व्यक्ति की प्रणय प्रवृत्तियाँ काल की कठोरता को नहीं मानतीं, और श्रृङ्गार तत्त्व समय के बदलते परिवेश को चीरता हुआ नित नवीन रूप लेता हुआ प्राणी-मात्र में प्रवाहित होता रहता है। मनुष्य के लिए इन प्रवृत्तियों को दबाना, झुठलाना अथवा आदर्श के नाम पर दूसरे को बिराना, शाश्वत सत्य से मुख मोड़ना है।

उर्दू काव्य की 'गज़ल' विधा की जीवन्तता का रहस्य मानवीय सवेदनाओं का स्वीकार्य्य है। अतः इन कविताओं का पढ़ना और पढ़ाना याथार्थ से साक्षात्कार करना ही नहीं, स्वयं के मानवीय स्वरूप को पहचानना भी है। गज़लों की महफ़िलों का अपने आप लोकरंजन का साधन बन जाने के कारणों को हमें समझना चाहिये और हिन्दी कविता को जनता से जोड़ने के लिये हमें छंदों की ओर लौटना चाहिए। हिन्दी गज़ल के नाम से इधर कुछ कविसम्मेलिनी कविताएँ लोगों को आकृष्ट करती दिखाई दी हैं, किन्तु वे उर्दू गज़ल की परछाईं मात्र बन सकी हैं, उनका स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं बना है। उनके अधिकतर शब्द उर्दू गज़ल में प्रयुक्त शब्दों से प्रथक नहीं हैं।

छंद काव्य का लगाव हृदय से है, अतः छंदों में बाँध कर जो भी कहा जाता है, वह हृदय को अधिक पकड़ता है और जो वस्तु हृदय को पकड़ेगी वह कहीं स्मृति का अंग भी बनेगी। छंदविहीन नई कविता की प्रायः इस पंक्तियाँ भी नई कविता के कवियों को याद नहीं रहतीं, जब कि छंदबद्ध काव्य के ग्रन्थ के ग्रन्थ लोग कण्ठस्त कर लेते हैं।

जीवन बहुआयामों में जिया जाता है। अलग-अलग आयु के अलग-अलग क्षणों में अलग-अलग अनुभूतियों का प्रादुर्भाव होता है और सामाजिक जीवन मे व्यक्ति की बहुत-सी प्रतिबद्धताएँ होती हैं; अतः हिन्दी कविता का दायित्व बहुत व्यापक है, उसे मात्र पाठ्य-पुस्तकों में समर्पित होकर नहीं रहना है और न गणित के प्रमेय के समान बुद्धि विलासियों का परस्पर राक्षसी रूप दिखाने का साधन उसे तो इतना तरल सरल और रससिक्त होना पड़ेगा कि वह

पूजा-घर से रंग-सभा (महफ़िल) तक के दायित्व एक साथ ओढ़ सके। मैंने अपने इस काव्य संग्रह को अभिमंत्रित गीत, प्यार और प्रणय के गीत, व्यथा एवं वियोग के गीत, श्रद्धा के गीत और स्नेह-सौरभ के गीत जैसे कुछ खण्डों में विभक्त कर जीवन के बहु आयामी क्षणों को प्रस्तुत किया है।

काव्य के क्षेत्र में मेरा प्रवेश 'रवीन्द्र गीतांजलि' के एक-सौ-एक गीतों के भावानुवाद के साथ हुआ था, अतः इस संग्रह में उस संग्रह के भी पांच गीत 'अभिमंत्रित गीत' खण्ड में पुनः प्रस्तुतत कर दिये हैं।

सामान्य पाठक और विद्वत् समाज मेरे इन गीतों को जहाँ तक मान्यता देंगे, मेरी उपलब्धि की सीमा वहाँ तक बढ़ेगी।

३४१, बहादुरगंज
इलाहाबाद—३
दू० भा०—५२८०६

कैलाश कल्पित
१४ सितम्बर १९८८

अभिमंत्रित गीत

वैचारिक मधुबन में रहकर
छोटा-सा उद्यान सजाया,
विचरण अगर करोगे इसमें
मधुकर बनकर रह जाओगे।
कहीं गंध बेले की होगी
बहकी होगी कहीं केतकी,
इस आँगन में यहाँ वहाँ पर
पारिजात झरता पाओगे।

● ●

याचना

•

देवि अपने वाद्य से परिचय करा दो
काव्य के सुर, राग में मैं बजा पाऊँ,
तुम मुझे इस यन्त्र के सब गुर बता दो।
देवि अपने वाद्य से परिचय करा दो।

भाव कैसे जागते हैं?
शब्द कैसे साधते हैं?
हृदय की अनुगूँज कैसे गीत में निज ढालते हैं?
मोड़ है क्या वीण की, गुरु-मंत्र इसका तुम सिखा दो,
देवि अपने वाद्य से परिचय करा दो।

साधना, आराधना की विधा से—
अवगत नहीं मैं।
भाव, भाषा, व्याकरण के शिल्प का
अधिपति नहीं मैं।
मैं तुम्हारा बन पुजारी, कौन से नैवेद्य लाऊँ?
तुम्हीं बतलाओ तुम्हारा अर्घ्य मैं कैसे सजाऊँ?
स्वयं निज अभ्यर्थना के श्लोक तुम मुझको सुना दो,
देवि अपने वाद्य से परिचय करा दो।

साधना में सुगति दो तुम,
सुमति दो चिन्तन-क्षणों में।
मिल सके पहचान मुझको,
सम्मिलित हूँ जब गणों में।
ग्रहण कर मुझको किसी वरदान का धारक बना दो
गात के ढीले पड़े सब तार मेरे झनझना दो
देवि अपने वाद्य से परिचय करा दो।

• •

मैं एक वाद्य

●

लग रहा जैसे कि कोई वाद्य हूँ मैं
और मेरे तार कोई छेड़ता है !
कौन है जो मीड़ मेरी है सजाता ?
कौन मेरे सुरों को मुझसे गवाता ?

गीत में हैं शब्द मेरे, भाव मेरे,
किन्तु इसके पार्श्व में है शक्ति कोई
वह जगाती है सुयश अन्तः करण का,
और मैं सब श्रेय लेता जा रहा हूँ

एक अभिनेता-सरीखा जी रहा हूँ
जो मुझे वरदान है वह दे रहा हूँ
माध्यम से अधिक मुझको कुछ न समझो
एक कल्पित वाद्य हूँ, बस बज रहा हूँ।

● ●

गीत का जागरण

•

जब कभी आनन्द जागा
सृजन गीतों का हुआ है,
और जब आक्रोश जागा
छंद टूटे है हमारे।
जागता अनुराग है जब
बीण बजती है हृदय की।
किन्तु जब विद्रोह जागा
तार तब टूटे हमारे।

सूर्य्य की गति अयनवत हो
ऊर्जा को बाँटती है
क्षितिज के उस पार तक विश्व
तिमिर के घन छांटती है।
कमल खिलते हैं हृदय के
मधुप आकर गुनगुनाते।
बदल करवट ब्रज-कुँवर सम
गीत मेरे कुनमुनाते।

आँख मलते जागते हैं
सूर्य्य को करते नमन हैं।
व्यष्टि की पहचान का—
वे चाहते करना सृजन है।
नई गीता का सृजन हो
गीत हों ऐसे हमारे।
हों कहीं परिणीत फिर भी
लगें सबको चिर कुँवारे।

• •

समर्पण

•

मेरे जीवन का लघु नर्तन
मेरी वाणी का यौवनपन
तेरी गरिमा के गीतों से
नित लेता आया नवजीवन।

वाणी की मदिरा पीने से
हम बन बैठे कुछ दीवाने।
विस्मृति से क्षण भी तेरे थे
ओ चिर परिचित ! चिर अन्जाने !!

मैंने तब से है छोड़ दिया
मंदिर के द्वारों मे जाना,
जब से तेरी व्यापकता को
जग के कण-कण में पहचाना।

निज लघुता की घातक कुण्ठा,
तेरी ही प्रभुता से छूटी।
अणु के जैसे लघु अवयव से,
ज्वाला प्रलयंकारी फूटी।

फिर भी तेरे प्रति नत इतना
पद-रज-कण भी गिरि बन जाए।
मेरे इतने होकर आओ,
मेरा अपनापन मिट जाए।

मेरे जीवन का लघु नर्तन····।

• •

अदृश्य का दर्शन

निखिल विश्व में नित्य विलय हो
जिसने अपना रूप छुपाया
जीवन के दर्पण में मैंने
प्रतिदिन उसकी देखी छाया।

जिसकी आभा मिली सब जगह
उससे ही मैं भेंट न पाया
ठौर-ठौर पर मन्दिर देखे
बैठा उसको कहीं न पाया।

उसके दर्शन में दर्शन था
मैं दर्शन का भेद न जाना
जन जन में, बन बिम्ब फिरा वह
पकड़ न पाया मैं दीवाना।

स्वर भर कर भी मौन रहा वह
मुखरित हुआ मौन होकर भी
सम्पुटता में पुष्प रहा वह
शतदला रहा कली बनकर भी।

जल की, थल की, नभ की शोभा
बिना तूलिका रही निखरती,
कानन में मधुमास बुलाकर
प्रकृति नवेली रही सँवरती।

चिर यौवन का दीप जलाकर
शीश धरा चन्दा, रजनी ने।
कौन बृहस्पति पूज पूज कर
जने सिंधु, गिरि जग-जननी ने।

अमर सुहागिन वसुन्धरा हित
रवि का थाल, सजा नित आया।
कोटि करों से कुमकुम छिटका
विपुलापति मैं देख न पाया।

कैसी अजब पहेली कवि ये!
सब रहस्य है, सभी प्रकट है।
उसका दर्शन कभी न मिलता
खुला सदा से जिसका पट है।

बात खटकती रही सदा यह
चिर प्रत्यक्ष भी देख न पाया
कैसा तेज-पुञ्ज वह होगा!
सूर्य्य बना है जिसकी छाया।

● ●

अभाव स्थिति

• •

जन्म से निज, रह रहा हूँ इस नगर में
और शैशव भी हुआ गत, इस डगर में।
पर न जाने क्यों अपरिचित हो गया मैं
हर सड़क के मोड़ से, अपने शहर में।

कल तलक मैं चल रहा था जिस सड़क पर,
वह फिसलती देह-सी थी, बहुत मांसल।
आज कुबड़ी हो गयी जाने कहाँ से
और उस पर लग गयी अनगिनत सांकल।

सड़क की बजरी धमकती जा रही है
और मंजिल दूर हटती जा रही है
ना-सुहानी जो हमारी थी सुपरिचित
रूप से वह भी बदलती जा रही है।

चिमनियाँ जलती नहीं हैं उस जगह अब
तड़ित-आभा-सी वहाँ अब बिजलियाँ हैं।
ठौर पर जिस, दर्द कहते थे हृदय का
मंच से उस, उड़ रही अब खिल्लियाँ हैं।

कल तलक जो बन्धु-बान्धव थे हमारे
वे अपरिचित बहुत कुछ अब हो गए हैं,
हम समझते थे जहाँ परिवार अपना
अब वहाँ पहचान अपनी खो गए हैं।

दिव्य जीवन का किया था लक्ष्य मैंने
अग्रसर होता रहा मैं आँख खोले।
पर न जाने किस गुफा में घुस गया मैं
खो गया व्यक्तित्व मेरा बिना बोले।

दृष्टिगत हूँ जो यहाँ, मै वह नहीं हूँ
भूमिका में रूप का आधार कैसा ?
एक अभिनय है निभाता जा रहा हूँ
कर्म मेरा पात्र के प्रतिरूप जैसा ।

मंच पर हूँ और अपने पंथ पर भी
है अजब कौतूहल रहा है जिन्दिगी में
मौन हो गतिमान होता जा रहा हूँ
किसी शिव की परिधि का है दिव्य फेरा ।

● ●

शून्य की ओर

●

हार में जो जीत है वह जीत जीना चाहता हूँ
प्रीति के प्रतिघात के अवघात रिसना चाहता हूँ
सत्य-घट के गरल के मैं घूंट पीना चाहता हूँ
दीप बनकर शिखा के मुख तिमिर पीना चाहता हूँ

व्यर्थ सृष्टा की कहानी का कुतूहल मत बनाओ
गर्व का प्रतिरूप, मुक्ताहार मुझको मत पिन्हाओ
मैं कथानक से सिमट कर शून्य बनना चाहता हूँ
स्नेहवश झर जाएं जो, वे अश्रु बनना चाहता हूँ

काव्य का वरदान देकर मत अमरता को दिखाओ
विश्व के इतिहास में मत नाम मेरा भी लिखाओ
जो मुझे वरदान है वह दान करना चाहता हूँ
सृष्टि के अवशिष्ट से अवसन्न होना चाहता हूँ

कौन था अभिशाप, जिसका शाप है मेरा अनुष्ठान ?
कौन से अवयव जुड़े जिससे अहम् मेरा गया बन ?
शाप को वरदान का प्रतिमान करना चाहता हूँ
मैं अहम् के मेरु को तृण-मान करना चाहता हूँ

हार में जो जीत है वह जीत जीना चाहता हूँ
सत्य-घट के गरल के मैं घूंट पीना चाहता हूँ।

● ●

मेरा उन्नयन

•

ठोकर पाकर जिनकी, मैंने उठना सीखा,
पथ के उन अवरोधों को है नमन हमारा।
कुश, कण्टक, पवि-पीन पात्र को अर्घ्य समर्पित
इनसे नित ऊपर उठने में मिला सहारा।

सरि, सर, सरिता-सैल, सिन्धु के कूल **किनारे,**
हिम, हिम-गिरि, हिमपात, गात के दूषण **सारे,**
अनुदक बने, अनुत्तम पग की उड़ती **रज ले**
दिशा झुकी हैं आज समर्पण लेकर **क्वाँरे।**

कवि कानन में कनक-कान्त की किरण बिखेरे
मानस मृज्य मृगा से मृगपति बना शनैः गति
सत सिन्धु का मन्थन बनकर ऊपर आया
अब चरणों में झुका आ रहा धवल निशा-पति।

पथ के व्रण बीते वृत्तान्त के विवरण **केवल**
मृध में मेघपुष्प-सा मैंने अश्व सँवारा
कल की बातें शेष, आज की उषा **किरण से**
आज सिद्ध है साध, आज है समय **हमारा।**

••

आस्था

●

जन जीवन की लीलाओं को
मैं दर्शक बन
रहा ताकता।
युग के संतापों की गाथा,
हृदय-पृष्ठ पर
रहा टांकता।

अथवा, मैंने आशुलिपिक बन
संदर्भित श्रुति-लेख लिए हैं
फिर, टंकित कर रचनाओं में
जन-समूह में बांट दिए हैं।

रचनाएं कुछ नहीं
कारबन-कापी हैं निज हृदय-पटल की,
बीज सरीखा कहीं खो गया, मैं—
देकर खेती, चिन्तन की।

जैसे पिघल पिघल कर गंगा
हिमखण्डों से नीचे आती।
हिमतुंगी मानस से प्रेरे,
सरित सृजन की बहती जाती।

सलिल सृजन का,
जहाँ, जहाँ जायेगा, द्रुम का रूप खिलेगा।
मानव की बौद्धिक-क्षमता का
वह अक्षुण्ण शृंगार करेगा।

● ●

साधना की गुरुता

•

शब्द अक्षर और भाषा
सभी शिक्षित जानते हैं
जो प्रकृति से कवि हृदय है
गीत केवल वह लिखेगा।

रंग हो, जल हो, फलक हो
तूलिका भी हो,
किन्तु बिन साधक, कहो क्या
चित्र अंकित हो सकेगा ?

बीन, वीणा, बाँसुरी
सब बजा सकते, है सहज ही
घाट जो पहचानता है
राग वह झंकृत करेगा।

प्राण, तन, निज स्वास की गति
एक जैसी है सभी की
साधना जिसने जगत में की,
वही अराध्य होगा।

• •

गीत की पहचान

•

कल्पना की अल्पना
जो हृदय पर अंकित हुई—
काव्य बनकर कागज़ों पर निज-करों टंकित हुई।
डूब कर जब भावना में
स्वर मुखर कोई करे
तब समझना कवि-हृदय की वीण थी झंकृत हुई।

काव्य से अनुराग
कोई राग यदि सर्जित करे
और फिर यह राग यदि, संसार-सुख वर्जित करे
लगें भरने स्वर, सभी वे
पाठ इसका जो करें
तब समझना किसी कवि को सिद्धि थी अर्जित हुई।

गीत क्या है कुछ नहीं
उठता हुआ इक ज्वार है।
जो हृदय के तट छुए
वह गीत-असि की धार है।
दर्द मीठा-सा उठा दे
उम्र भर, यदि चोट यह,
तब समझना किसी की थी साधना विकसित हुई
कल्पना की अल्पना..........

••

नव उन्मेष

•

आज कविता पुनः जागी
फिर बना मैं कुछ विरागी।
शब्द अक्षर भाव भाषा—
का हुआ मैं पुनः भागी
आज कविता पुनः जागी

रंध्र जो मस्तिष्क के
निष्पंद होकर के पड़े थे,
चेतना की उर्मियाँ
अब जागने उनमें लगी हैं।

धुंध के जो वलय, मन-आकाश पर
घहरा गए थे,
आज उनमें से आषाढ़ी बूँद
कुछ झरने लगी है।

अब सलिल विस्तार लेगा
कमल दल अब फिर खिलेगा
केतकी की गंध पाकर
फिर कहीं बेला खिलेगा

काव्य की निज वाटिका के—
सृजन का मैं हुआ भागी,
आज कविता पुनः जागी
फिर बना मैं कुछ विरागी।

••
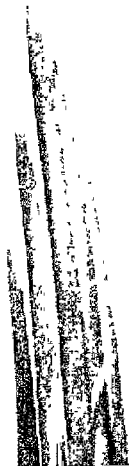
मनोदशा

वे बुनते हैं सन्नाटे को
मुझको बुनता है सन्नाटा,
जीवन का व्यापार अजब है
सुख मिलता है, पाकर घाटा।

सेवावृत्ति जगी जब जब भी
मन कानन की कली खिली है
जब जब कुछ दे सका किसी को
एक परिमित तृप्ति मिली है।

वैसे देने को था ही क्या
वैभव की भूखी दुनिया को।
किसको है अवकाश सुने जो
पिंजरे में बैठी मुनिया को ?

फिर भी इस मुनिया ने जग को
कुछ तो मीठे बोल दिये हैं,
जीवन जीने के प्रतिमानों—
के रहस्य कुछ खोल दिये हैं।

तृप्ति प्राप्ति में नहीं, विसर्जन—
की प्रज्ञा पर सम्भावित है
स्थिति कुछ भी नहीं, ग्राह्यता—
के सरगम पर आधारित है

शोषण का षड्यन्त्र

•

बाह्य आवरण की सुन्दरता—
का निज मोल बढ़ाने वाले,
गली गली में दर्पण बिकते
परछाईं दिखलाने वाले।

इंगित कर दे जो अंतस् के—
काजल को, वह यन्त्र कहाँ है?
पाठ सिखाए मानव को जो—
मानवता का, मन्त्र कहाँ है?

अपने-अपने स्वार्थ लक्ष्यकर
पूरव-पश्चिम भाग रहे सब
एक दिशा और एक लक्ष्य ही—
दे सबको वह तन्त्र कहां है?

संस्कृतियों की भीड़ लगी है
सबका चिन्तन बहुत पुराना
किन्तु परस्पर शोषण के हित
नित चलते षड्यन्त्र यहाँ हैं।

• •

मैं एक पागल

•

नियतिवादी सभ्यता की ले ध्वजा,
एक ईंटा हाथ में अपने उठा,
पागलों-सा सड़क पर हूँ घूमता,
गालियाँ आकाश को देता हुआ।

डाँटता हूँ मैं किसी प्राचीर को,
बात करता हूँ शिला के खण्ड से,
नालियों में पैर देता हूँ डुबा---
जान्हवी की मुक्त धारा समझकर।

शहर भी है भीड़ भी है शोर भी,
किंतु मेरी राह से सब दूर हैं।
लोग भागे जा रहे जाने कहाँ,
मैं अकेला पंथ पर अपने खड़ा।

भेड़ सम सब भीड़ में हैं चल रहे,
जिधर अगली भेड़ है सब हैं उधर।
हैं सभी ओढ़े अँगरखा धर्म का
मात्र मानव बन के, जीते क्यों नहीं ?

कौन कहता है कि पूजा मत करो ?
कौन कहता है कि मत मानों खुदा ?
किन्तु मानवता की पहली शर्त है
आदमी से है नहीं कोई बड़ा।

• •

काग और काकातुआ

•

डाल पर बैठा हुआ मैं काग हूँ,
नहीं सुविधा में पला काकातुआ।
मैं नियंता हूँ स्वयं की नियति का,
चेतना की किरण से जागा हुआ।

मैं जहाँ हूँ स्वयं अपने आप हूँ,
मैं किसी की कृपा का भाजक नहीं।
दीन बनकर कुछ नहीं मैं चाहता,
मैं किसी की दया का याचक नहीं।

आँख की मैं किरकिरी उनका हुआ,
दीक्षित जो मुझे कर पाए नहीं।
हाथ उनका है मेरे निर्माण में,
बात ऐसी बढ़ के कह पाए नहीं।

कुछकी क्षमता थी कि जाते व्योमतक,
किन्तु रंगीनी उन्हें छलती रही।
मेनका के हाथ से खाते हुये,
पींजर में जिन्दगी पलती रही।

रंग मुझको सृष्टि में ऐसा मिला,
दूसरे का रंग चढ़ पाया नहीं,
वीतरागी कौन है मुझ-सा यहाँ ?
नीड़ मैंने निज बनाया ही नहीं।

स्वर हमारे रंच भी मीठे नहीं।
पर हमारे बोल अपने बोल हैं,
तुम भजन गाओ तुम्हारा है धरम,
हम किसी का भी दिया खाते नहीं।

काग हूँ तो काग हूँ क्या क्षोभ है?
किसी पिंजरे का नहीं काकातुआ।
मैं नियंता हूँ स्वयं की नियति का,
चेतना की किरण से जागा हुआ।

● ●

अभिशाप का वरदान

•

उसको ही वर्दान मिला है
रूप नहीं जिसने पाया है
कौवों को आकाश मिला है
तोतों ने पिंजड़ा पाया है।

फूलों की क्यारी के ऊपर
भँवरा नित निर्द्वन्द्व उड़ा है
तितली ने जब पर फैलाए
लोगों ने उसको पकड़ा है।

गली-गली में स्वान घूमते
उनकी खाल न छूता कोई,
मृग वन में मारा जाता है
चमड़ी का व्यापार बड़ा है।

अभिशापों का कोहरा जब जब
पथ पर बनता गया घना है,
क्षमता दिखलाने का तब-तब
वह परोक्ष वर्दान बना है।

• •

अपनी पहचान

•

आओ अपनी पहचान करें

हम टूटे हैं किस-किस कोने,
अन्तरमन में यह ध्यान करें।
आओ अपनी पहचान करें।

क्या किया दूसरों ने अथवा—
क्या नहीं किया की बहस बन्द,
हमने क्या किया किसी के हित,
हम हैं कितने प्रतिमान बनें ?
आओ अपनी पहचान करें।

जीवन जीने के उपक्रम में
क्या लक्ष्य किया, क्या हुआ प्राप्त
लघु मानव की इस काया में
दानव कितना हो गया व्याप्त।
हम बैठ किसी भी कोने में
कुछ इस पर भी तो ध्यान धरें।
आओ अपनी पहचान करें।

प्रतिपल, प्रतिक्षण निज स्वार्थ लिए
जाने अन्जाने जीते सब।
स्पर्धा में की बेइमानी
हमने इस पर सोचा है कब ?
इस जीवन में किस अर्जन का
नैतिक मन से अभिमान करें ?
आओ हम इसका ध्यान करें।
आओ अपनी पहचान करें।

• •

जवानों को उद्‌बोधन

•

कुसुम की मुस्कान लेकर,
शूल का परिहास कर दो
विश्व के कुण्ठित जनों में
आस का मधुमास भर दो।

हर दिशा में पृथकता की
धूलमय जो आँधियाँ हैं।
स्नेह मे डूबे हृदय ले
तुम उन्हें बरसात कर दो।

नमन में जो शक्ति है
वह नमन लेने में नहीं है।
भक्त में अनुरक्ति है जो
देवता में भी नहीं है।

नम्रता के शौर्य्य से
तुम सभी पाहन द्रवित कर दो
दिग्भ्रमित जो हो गए हैं
तुम उन्हे नव दृष्टि दे दो।

प्रगति तुमने बहुत की है
लक्ष्य भी तुमने छुए है।
किन्तु इन उपलब्धियों के
बाद भी है बहुत करना।

आज लो संकल्प उनकी पूर्ति
की सौगंध लेकर,
तुम करो परिपूर्ण सपने
देश के, निज रक्त देकर।

सान पर यह बीस वर्षों बाद
चढ़ती है जवानी,
कुछ करो ऐसा कि जो
इतिहास में हो नव-कहानी।

कर सको निर्माण कोई
तो करो अविराम बढ़ कर।
चीर फहराओ गगन में
कीर्ति के स्तम्भ पर चढ़।

सींच सकते हो तृषा जनकी
तो बढ पाताल तोड़ो।
जोड़ सकते हो अगर कुछ तो
हृदय के पाट जोड़ो।

तोड डालो हौसले तुम
दुश्मनों के तड़ित बनकर।
देश को उद्यान में बदलो
नया मधुमास लाकर।

हो जहाँ पर भी अँधेरा
वहाँ से उसको भगाओ,
सूर्य्य की नव रश्मियों सम
हर दिशा में फैल जाओ।

● ●

कोई काल्पनिक सफलता

•

कौन सूरज उगा जिसने हृदय का
सरसिज खिलाया
कौन वासन्ती हवा आई कि
जिसने गुदगुदाया
कौन से स्वर सुने जिसके साथ
मैं कुछ गुनगुनाया
कौन सा वारिद झरा जिससे टिकोरा
फूल आया।
बात क्या है कूकने फिर से लगी कोयल
विजन में ?
इन्द्रधनुषी स्वप्न कोई आ गया फिर
क्यों शयन में ?
वार्द्धिकता सुप्त होकर फिर
जवानी कुड़बुड़ाई
सिद्धि की जो सुन्दरी थी
आँख उसने है मिलाई
किसी लम्बी साधना पर मिली है
शायद सफलता !
झर गए काँटे विटप से, उगे जो थे
ले विफलता।
पारितोषिक तृप्ति से बढ़कर नहीं होता
धरा पर
मिली है मुझको सफलता
किसी लम्बी साधना पर।

• •

निर्माण का इतिहास

•

श्रमिकों के श्रमजल की बूँदें जितनी गिरीं धरा पर,
उतने मोती मिले देश को अपनी वसुन्धरा पर।
नालंदा के खण्डहर अपना हैं इतिहास बताते,
कौशम्बी के शेष भवन बीते युग को दोहराते।

गुफा अजन्ता में नर्तन करती बालाएं सुन्दर,
वातापी, सित्तनवासल में मिलीं मूर्तियां मनहर।
इल्लौरा की कला, अनोखा मन्दिर भुवनेश्वर का,
जैन-तीर्थ आबू का मन्दिर, मन्दिर रामेश्वर का।

जो हमने निर्माण किया था बीते युग में अपने,
उसके ये अवशेष बिम्ब हैं, ये हैं जीवित सपने।
नवयुग में हमने करवट ली नौरोजी के द्वारा,
सर फीरोजशाह के चिन्तन ने भी दिया सहारा।

आशुतोष, सुरेन्द्र नाथ, टैगोर पूर्व में गरजे,
तिलक, गोखले और रनाडे महाराष्ट्र से उपजे।
महामना उत्तर से, गांधी गुजराती आँचल में,
बढ़े लाजपत राय देश के पंजाबी आँचल में।

बाबू राजेन्द्रर बिहार से, दक्षिण से राजा जी,
मोती और जवाहर की सेवाएँ सबसे ताजी।

बनी योजना पाँच वर्ष की नव नेताओं द्वारा,
इस युग में जो प्रगति हुई वह केवल श्रम के द्वारा।
बांध जहाँ पर बाँधे सरिता सागर बनी वहाँ पर,
खेत वहीं लहराया, कल थी धरा जहाँ की बंजर।
उपजे नव-उद्योग, कारखानों ने नव करवट ली,
यत्र-तत्र सर्वत्र श्रमिक जनता ने शक्ति प्रकट की।
कुछ दशकों के अन्दर ही इतना महान् परिवर्तन,
कहीं भाखरा, कहीं भिलाई, टाटा का आवर्तन।
पैरम्बूर, विशाखापटनम् चितरंजन की उद्गति,
राउरकेला, नेपा, सिंदरी की उत्पादन की गति।
विश्व चकित है देख हमारी प्रगति-मेखला का क्रम,
हमने अपनी साख रोप दी, हम कितने हैं सक्षम।
नाट गगन में गरुण सरीखा घूम रहा है।
सागर में विक्रान्त शेर-सा झूम रहा है।
आर्यभट्ट नभ की सीमाएँ नाप रहा है।
'अग्नि-परीक्षा' से अब दुश्मन काँप रहा है।
सब कुछ है फिर भी मजदूरों के जीवन में—
परिवर्तन वह नहीं आ सका जो आना था,
जिसके श्रम के बूते हम निर्माण कर रहे।
उसको वह कुछ नहीं मिल सका जो पाना था।

● ●

वन्दना भारत-भारती की

●

माँ भारती !
रवि चन्द्र तेरी ले रहे दिन-रात अविरल आरती
माँ भारती !

विश्व सरिताएँ शिखर से नीर भर सागर बनातीं
सत सागर से उठी लहरें चरण-रज निज धुलातीं
गा रहा सागर चरण में—जय जयति जय भारती
माँ-भारती !

स्वर्ण किरणें नित्य प्राची में मुकुट तेरा सजातीं
देवियाँ बन कर शिला दरबार उत्तर में लगातीं
तू महारानी बनी यूरेशिया में व्यापती
माँ-भारती !

निशा नभ में दीप-माला नित्य संध्या में जलाती
गोद में पाकर तुझे, पृथ्वी अमिट उन्माद पाती
और इस उन्माद में दिन रात पृथ्वी नाचती
माँ-भारती !

सृष्टि तेरी याचना को नित नई ऋतुएँ बनाती
नित नए फल-फूल देकर, धरा की थाली सजाती
सौर मण्डल से विमुख हो, प्यार तुझ पर वारती
माँ-भारती !

पालती हैं निज सुतों को जननि जग की, वक्ष-पय दे।
तारती है इस जगत में अंश अपने गात का दे
धार गंगा की पिला, परलोक तक तू तारती,
माँ-भारती !

● ●

मेघोन्माद*

●

आज वारिद
झरे, झर-झर ।
बहे सुन्दर
सजल-जलधर
तोड़ कर नभ-द्वार सत्वर
गिरें बहु निर्झर धरा पर ।
दृष्टिगत नहिं
अन्त जल का ।
है प्रदर्शन
मेघ बल का ।

बाँध झोंके तड़ित-पति हर,
झर रहा है हहर-हर-हर ।
शैल में, बन में शिखर में
बह रहा जल इस प्रहर में ।
केश वारिद के बिखर कर
कर रहे हैं नृत्य सुन्दर ।
वर्ष-इस, फिर हो गया मन मस्त लख,
ये सावनी घन ।
लगा घन सँग, झूमने मन ।
हुआ पुलकित पुनः यह तन ।
आज कलरव जगा मन में
सुख जगा अन्तःकरण में ।

द्वार के अवरोध टूटे
सावनी जल-बाण छूटे
इस प्रहर में
छोड़ कर घर
जा सकेगा कौन बाहर ?

[आज बारि झरे झर-झर] * रवीन्द्र गीतांजली

● ●

जीवन सरोवर*

•

जब सूख जाय जीवन-सर जल,
हृद्-सरसिज के सूखे हों दल।
तब करुणा के बादल बन कर,
तुम उमड़-घुमड़ आना प्रीतम।

परिवर्तित हो जब मधु समस्त
जीवन का, कटुता-बीच ग्रस्त;
तब गीतों की गंगा बनकर,
नभ से भू पर आना प्रीतम।

जग के दस-दिश के कोलाहल,
जब मुझे फाँस लें बन दलदल;
तब, हे प्रशान्त ! विश्राम-दूत---
का रूप लिये आना प्रीतम।

जब मैं बैठा हूँ दीन-हीन,
कुम्हलाया, सिमटा, उदासीन;
तब नृप सम तुम मम-तन-निधान---
के द्वार खोल आना प्रीतम।

जब दृष्टि भ्रमित वंचना भरे,
लिप्सा की रज चख बन्द करे;
तब प्रचण्ड ओजस्वी प्रकाश---
को साथ लिये आना प्रीतम।

(जीवन जखन शुकाय जाय)*

• •

नित्य-नवीन*

•

प्रियतम मेरे प्राणों में तू
नित नए नए रूपों में आ।
गंधों में आ
वर्णों में आ
तन की रोमांचित सिहरन बन
निर्झर उल्लास सुधा बन आ
मम मुग्ध मुँदे नैनों में आ।
प्रियतम मेरे प्राणों में तू
नित नए रूपों में आ
हे उज्ज्वल रे!
हे निर्मल रे!
हे सुन्दर स्निग्ध प्रशान्त अहे!
मनहर मेरे, सुख-दुख में आ,
नित नैमित्तिक कामों में आ।
मेरे समस्त कार्यों का तू
नित चरम लक्ष्य बन-बन कर आ।
नित नए नए रूपों में आ
मेरे प्रियतम :प्राणों में आ!

(तुमि नव-नव रूपे एशो प्राणे)*

• •

स्वर-जाल

●

कैसे गाते राग प्रिये ! इतने सुन्दर ?
बन गए मन्त्र वे सभी गीत जो हुए मुखर ।

धरती के कण-कण में तेरा है गीत भरा
पाषाणों की छाती से निकली गीत धारा
इच्छा जब की, मैं कलकल स्वर का करूँ गान
रुँध गया गला, मैं विवश हुआ, रुक गयी तान ।

कैसे गाते हो राग, प्रिये ! इतने सुन्दर ?
बन गए मन्त्र वे सभी गीत जो हुए मुखर ।

कैसा अद्भुत स्वर-जाल बुना !
जो बहुत सूक्ष्म पर बहुत घना ।
देखा तो दिया दिखाई ना
भागा तो चारों ओर तना ।

गाते कैसे हो राग, प्रिये ! इतने सुन्दर ?
बन गए मन्त्र वे सभी गीत जो हुए मुखर ।

(तुमि केमन करे गान कोरो)

● ●

दिव्य-स्वातन्त्र्य*

●

रहता जहाँ निर्भय हृदय
मस्तक न झुकता है कभी
दिखती नहीं हैं जिस जगह
अन्याय की छाया कभी
नहिं शुल्क लगता ज्ञान का,
संकीर्ण प्राचीरें नहीं।
नहिं एकता खण्डित जहाँ
घर घर पृथक दुनिया नहीं।
सद्-स्रोत को, केवल हुआ,
उद्भव जहाँ पर शब्द का।
गाम्भीर्य ही है निधि जहाँ
नहि प्रश्न है प्रारब्ध का।
है पूर्णता के हित जहाँ
उद्यम सदा ही अग्रसर।
अरु रूढ़ि की मरु-भूमि में
सूखा जहाँ न विवेक-सर।
तेरा जहाँ नेतृत्व है
विस्तार मन पाता जहाँ,
विस्तीर्ण होते भाव हैं
चिन्तन सदा जगता जहाँ,
उस दिव्य ज्योतित ज्योति के
स्वातन्त्र्य में निज देश हो,
जागा करे नित सूर्य-सा
शोषण नहीं अवशेष हो।

*रवीन्द्र गीतांजलि

● ●

अंतस् की अनुभूति

•

ये है अनुभूति की बस बात,
अंतस् कूप जैसा है।
बहुत गहरे उतरिये, तब कहीं
कुछ दाखला - सा है।
बुझी होगी किसी की प्यास—
नदियों और पोखर में,
छलकता नीर जो दिल में
बढ़ाता बस तृषा को है।
हृदय का नीर पीने को
हृदय का पात्र ही चाहिये।
दिलों को बाँधने को
चंद मीठे बोल ही चाहिये।
हृदय के पात, रस्सी से—
कभी बाँधे नहीं जाते,
इन्हें आँखों के पानी से बनी
कुछ रस्सियाँ चाहिये।
किसी की रस्सियाँ पानी की
मुझको बाँध बैठी हैं
मिला है दर्द मुझको वह
कि अब कुछ भी नहीं चाहिये।

• •

प्यार और प्रणय के गीत

काव्य के, जो सृजन में सुख है
उसे मैं जानता हूँ,
कल्पना में प्रेमिका से मिलन
का सुख जानता हूँ।
पूर्ण-रचना पर मिली परितृप्ति
से अवगत रहा हूँ,
मैं किसी अनुराग में वैराग
का सुख जानता हूँ।

● ●

स्पन्दन

•

मेरे प्राणों का स्पन्दन
रह रह कर करता है नर्तन
वैराग ओढ़ता है विचार
पर हृदय चाहता आमन्त्रण

किसका आमन्त्रण ? नहीं पता
पूछो तो पाता नहीं बना।
फिर भी मन के सारे उपक्रम,
जाते हैं अपने भाव जता।
कैसे ?
होठों के कम्पन्न से कुछ-कुछ,
कुछ आँखों की मादकता में।
कुछ गुञ्जित वाणी के स्वर में,
कुछ काया की चंचलता में।

मेरे गीतों का राजहंस
नभ में डैने फैलाता है।
पर धरती के यौवन पर ही,
वह बार-बार मँडराता है।

सौ बार छला वह गया, किन्तु
कुछ नहीं कर सका परिवर्तन
वैराग ओढ़ता है विचार
पर हृदय चाहता आमन्त्रण

मेरे प्राणों का स्पन्दन
रह रह कर करता है नर्तन ॥

• •

निवेदन

•

तुम न मुझसे भले हो मुखर
मत मुझे दो प्रकम्पित अधर
साधना सिद्ध हो जायगी
देख लो बस मुझे दृष्टि-भर।

कौन कहता मुझे प्यार दो
कोई मुझको भी संसार दो
पास में तुम थे बैठे कभी
इतना कहने का अधिकार दो।

तुमसे मेरा भी सम्बन्ध था
बिन लिखा कोई अनुबन्ध था
कह न अब तक सका भीड़ से
यह अजब एक प्रतिबन्ध था।

तुम कभी मत मुझे प्यार दो
भ्रम भरे शब्द-पतवार दो
नाव आशा की, खे लूँगा मैं
काट दूँगा अकेले उमर।

तुम न मुझसे भले हो मुखर
मत मुझे दो प्रकम्पित अधर
साधना सिद्ध हो जायगी
देख लो बस मुझे दृष्टि-भर।

• •

किसी की छाया से

•

तुम्हें कसम है तुम दर्पण के पार न आना
मुझको अपनी चंचलता से भय लगता है
यही बहुत है छवि निहार लूँ कुछ पल को मैं
मेरा कल्मष जाने क्यों कसमस करता है।

अपनी सीमाओं का मुझको ज्ञान रहा है
किन्तु नहीं आरक्षण बेसुध क्षण का होना
जाने कब बाहें उठ जाएं तुमको छूने
प्रतिआकर्षण में गति का संचालन होता

धरती को बाहों में भरने नित रवि आता
और चाँदनी को छूने सागर उठ आता
कली कली का यौवन छूता मलय-पवन है
मानव होकर अपने पर विश्वास करूँ क्या !

तुम्हें कसम है तुम दर्पण के पार न आना
मेरा अहम् शेष मुझमें ही तुम रहने दो
संयम की गाँठें तो छाया ही में ढीली
साक्षात् हो गया अगर, तो फिर क्या होगा !

तुम्हें कसम है तुम दर्पण के पार न आना
मुझको अपनी चंचलता से भय लगता है
यही बहुत है छवि निहार लूँ कुछ पल को मैं
मेरा कल्मष जाने क्यों कसमस करता है।

• •

तुम्हारा प्यार

•

तुम्हारा प्यार जगा अन्जानेपन में हौले-हौले से
तुम्हारा मीत बना अन्जाने पन में हौले-हौले से
सिद्धि में साध छिपी है ज्यों
रश्मि में आग छिपी है ज्यों
त्याग में राग छिपा है ज्यों
अभ्र में पवन छिपा है ज्यों
तुम्हारा प्यार छिपा इन सांसों में त्यों हौले-हौले से
तुम्हारा मीत बना अन्जानेपन में हौले-हौले से

विजन में शान्ति जगी है ज्यों
जलन से ज्योति पगी है ज्यों
भाव से काव्य रँगा है ज्यों
स्वरों से राग रँगा है ज्यों
तुम्हारा प्यार रँगा इन गीतों में त्यों हौले-हौले से
तुम्हारा मीत बना अन्जानेपन में हौले-हौले से

कुसुम में गंध बसी है ज्यों
गात में छिपी आत्मा ज्यों
सृष्टि में राम रमा है ज्यों
शिखर पर शिशिर जमा है ज्यों
तुम्हारा रूप जम गया प्राणों में त्यों हौले-हौले से
तुम्हारा मीत बना अन्जाने पर में हौले-हौले से
तुम्हारा प्यार जगा अन्जानेपन में हौले-हौले से।

• •

प्यार का पत्र

•

प्यार का पत्र तुमसे मिले ना मिले
मैं तुम्हारे नयन ही से तुमको पढ़ूँ।
आ सकूँ घर तुम्हारे या आ ना सकूँ
चाँद बनकर तुम्हारी अटा पर चढ़ूँ।

झुक सकूँ पाटलों पर या झुक ना सकूँ
गीत बनकर तुम्हारे अधर पर रचूँ।
छू सकूँ कर तुम्हारे या छू ना सकूँ
बन के मेंहदी तुम्हारे पगों को रचूँ।

हाथ मेरे न पहुँचें भले कण्ठ तक,
हार बन कर तुम्हारे गले से लगूँ,
पास में हो हमारे या तुम दूर हो
रात भर भावना में तुम्हारे जगूँ।

प्यार का पत्र.......॥

• •

मिलन की बेला

•

जितनी सांसें मैंने ली हैं
उतने दीप जलाए रे!
नभ के पथ से, प्रीतम घर तक
बन्दनवार सजाए रे!

वर्ष वर्ष का तप आराधन
नव यौवन का मान रे!
प्रीतम की करुणा को पाकर
आज बना वरदान रे!

जब से जगी चेतना मन में
हृदय-हूक ने मारा था,
सागर में जो लहरें आई
उनका ज्वार हमारा था।

इतने परिचित प्रिय तुम होगे
मैंने कहाँ विचारा था,
जब जब दृष्टि पड़ी चन्दा पर
तब तब तुम्हें निहारा था।

आमों में जब बौरे बौरे
सम्बल कौन हमारा था?
हमने हर कोयल के मुख से
प्रीतम! तुम्हें पुकारा था।

कितनी पावन घड़ी आज की
अद्भुत भाग्य हमारा रे!
सागर ने सरिता के द्वारे—
आकर अरे! पुकारा रे!

जितनी सांसें मैंने ली हैं........

• •

मंगलगान

•

आओ,
बन्दनवार सजाओ, आओ
वन्दनवार सजाओ।
आए हैं मन भावन राजा
सब मिल मंगल गाओ
आओ,
वन्दनवार सजाओ, वन्दनवार सजाओ।

हमको अपने मीत मिले हैं
कंठ बसें, वे गीत मिले हैं
मन सरसिज के फूल खिले हैं
भाव-तरी को कूल मिले हैं
कुमकुम चौक लगाओ,
आओ वन्दनवार सजाओ।

शुभ दिन के संकेत मिले हैं
युग बीते अभिप्रेत मिले हैं
शेष हुई अँधियारी रातें
दिनमणि से होंगी अब बातें
हरसिंगार झर गमक रहा है
अगजग सारा महक रहा है
मंगल कलश उठाओ
रोरी चन्दन लाओ,
स्वागत दीप जलाओ
सब मिल मंगल गाओ
आओ, बन्दनवार सजाओ
आओ
बन्दनवार सजाओ।

••

वर आवाहन

आवाहन लो, आवाहन लो
जीवनधन हे ! आवाहन लो।

नमन चरण में ग्रहण करो तुम
किरण-करों से वरण करो तुम
अरुण तनय हे ! वरुण-तनय हे
जीवन धन हे ! आवाहन लो।

वनपलाश-सी खिली गात की डाली डाली
तरुणाई ऐसी फूटी, जैसे शेफ़ाली।
पारिजात के कानन से सौ बार पुकारा,
किन्तु तुम्हें मैं बुला न पाई हे वन माली !
आज अचानक गुनगुन करते उड़ आए तुम
जीवन का मधुरस जी भर कर ग्रहण करो हे !

आवाहन लो, आवाहन लो
जीवनधन हे ! आवाहन लो।

नक्षत्रों-सी आशा-माला गूँथी मैंने
किन्तु न आए जब तुम, उनको तोड़ बहाया।
निशिपल में वे फूल गिरे नीले आँगन में
किन्तु न जाने क्यों तुम इसको समझ न पाए।
फिर भी ध्रुव-सा प्यार हमारा अटल रहा जब
दृष्टि तुम्हारी पड़ी और तुम द्वार आए।

मानसरोवर-सा मेरा शुचि जीवन घट ये
रोम रोम है कमल-नाल सा दीप सँजोए।
एक तुम्हारी पूजा के हित अर्घ्य सजाया
देव हमारे आओ अंगीकार करो हे।

आवाहन लो आवाहन लो
जीवनधन हे ! आवाहन लो।

पापी तन

•

वैसे तो पापी तन मेरा
तुम चाहो पावन हो जाए
जेठ दुपहरी तन पर छाई
तुम चाहो सावन हो जाए।

दुनिया के मेले में आकर
निज गन्तव्य भुलाया मैंने
यदि चरणों के चिन्ह मिलें तो
मंजिल मन-भावन मिल जाए।

जग लोलुपता से बचने को
पट-प्राचीर तनाई मैंने
यदि तेरा संकेत मिले तो
अवगुण्ठन मेरा खुल जाए

मैं ऐसी मरु-भूमि निगोड़ी
तन-आँगन में कंटक पाले।
यदि करुणा तेरी पा जाऊँ
मुझको वृन्दावन मिल जाए।

स्वार्थ जगत का, पूरा करते
दाघ हृदय का, बढ़ता जाता,
यदि तेरा संसर्ग मिले तो
तन मन सब चन्दन हो जाए।

मैं मिट्टी की ओछी गुड़िया
पिंजर पाहन से निर्मित है।
यदि तेरा स्पर्श मिले तो
यह काया कुन्दन हो जाए।

• •

अषाढ़ का गीत

•

लो फिर अषाढ़ आया
मदमाती अँगड़ाई लेता
फिर बयार लाया
लो फिर अषाढ़ आया।

शीतल, मंद झकोरा चंचल
जाने किस षोडसि का आँचल
दूर गगन में इन्द्र धनुष-सा
लहराता आया।

आँख मिचौनी खेला प्राची
नगर-वधू बन बूँदें नाचीं
घर आँगन खेतों की माटी
महकाता आया।

कुंज-कुंज नाचे पिक मोरा
विरहिन का थिरका तन गोरा
तन के सुत पड़े तारों में
सरगम भर लाया।

लो फिर अषाढ़ आया
लो फिर अषाढ़ आया॥

• •

पिया का परस

•

परस पिया का, मैं क्या जानूँ !
परस पिया का मैं क्या जानूँ !

बरस हुए संवत्सर बीते
तरुणाई - क्षण बीते रीते
रुनझुन ये पिय के आने की
कोई बताए कैसे मानूँ।
परस पिया का, मैं क्या जानूँ !

बरस बरस से
बरस बरस कर
दोनों नयना फरक रहे हैं।
सरस पिया का
रूप निरखने
जोगी बन मग निरख रहे हैं।

दरस मिले बिन, तपन जगी, तन।
परस मिले तो, तपन बुझाऊँ।
तन की तन्द्रा, व्योम-विलय हो
तत्व पिया का, यदि मैं पाऊँ।

तन - वीणा की
तरज बजी क्यों ?
ग्रहण किया क्या श्रवण, पिया ने ?
इन नयनन को
सहज बिछा दूँ
पग-ध्वनि यदि पी की पहचानूँ।

परस पिया का मैं क्या जानूँ
परस पिया का मैं क्या जानूँ

• •

अभिलाषा

वे कवि होते
मैं चित्रकार
मैं चित्रकार
वे कवि होते ।

मैं सुन्दर-सुन्दर भाव चित्र में अंकित करके धर देती
वे सुन्दर-सुन्दर कविता में उन चित्रों को वर्णित करते ।
वे कवि होते
मैं चित्रकार
मैं चित्रकार
वे कवि होते ।

मैं मूक कल्पना अंकित कर, बिन लिखे कवयित्री हो जाती
वे बिना कल्पना-कल्पित के इक चित्रकार भी हो जाते ।
वे कवि होते
मैं चित्रकार
मैं चित्रकार
वे कवि होते ।

मैं अन्तर्मन की वाणी को कुछ चित्रों में मुखरित करती
वे मेरी करुणा, कविता में, फिर जगह-जगह छपवा देते ।
वे कवि होते
मैं चित्रकार
मैं चित्रकार
वे कवि होते ।

मैं रूप रंग मादक तन को सतरंगी आभा से रँगती
वे रूपरंग में छिपी हृदयाभिलाषा लिखकर रख देते ।
वे कवि होते, मैं चित्रकार
मैं चित्रकार, वे कवि होते ।

अरूपा की व्यथा

•

रंगीन रही मेरे मन की माया जितनी
उतना ही कटु निज जीवन का ऐतार्थ रहा।
जितना तरसी सुख पाने को मेरी काया
उतना ही लोगों ने मुझसे निज स्वार्थ दुहा।

जिसको समझी बन पाएगा जीवन साथी
उसने ही मीठी बातों से मुझको लूटा।
श्रृंगार कर रही थी लेकर जिस दर्पण को
बरबस मेरे हाथों से वह दर्पण छूटा।

मैं छली गई हर बार लिए सपने कोरे,
आँखों के डोरे लाल, लाल न हो पाए।
था भाग्य हमारा किसी उर्मिला का जैसा
परिणय पाकर भी जो प्रिय पी को न पाए।

कितना अन्तर है नर-नारी की काया में
कहने को क्षमता की बातें, कुछ भी कर ले
लम्बी चौड़ी बातें करने में क्या लगता
बातों में हमने फेंके, नहले पर दहले।

पर बात-बात है बातों की क्या बात करें
है सच यह मुझको अपना चाहा मिला नहीं।
काया का रोचन लखने वाले बहुत मिले
पर मन की सुन्दरता का दृष्टा मिला नहीं।

आया था सावन, चला गया बिन गले मिले
मैं रात-रात भर माघ-पूस में ठिठुराई।
पाषाणी काया की अब मैं संरक्षा हूँ
मेरे आगे मत चिल्लाओ होली आई।

होली आए, या फिर-फिर आए दीवाली
मेरे मन में अब शेष नहीं कोई हुलास।
क्या लाभ कि अब सावन लेकर आए कोई
अब सूख गई अपनी काया की जगी प्यास।

• •

प्यार की भूख

●

मानव जीवन ही नहीं
सकल संसार प्यार का भूखा है।

फूलों पर तितली रही रीझ
कलियों पर अलियों की टोली,
काले कजरारे मेघों को—
लखकर, मयूर बोला बोली।
बौराए आमों को पाकर—
मादा कोयल भी बौरायी,
'कू-कू-कू-कू, पी कहाँ गए ?'
पेड़ों में छिप कर चिल्लाई।

स्पन्दित होकर पावस से, झींगुर मंजीर बजाता है,
मण्डूक जिसे हम कहते हैं, वह गीत प्यार के गाता है।
जग में ये सब तो चेतन है, जड़ भी चेतन बन जाता है,
पंकज पराग अर्पित करते, द्रुमदल से रज झर जाता है।

अविरल धरती है नाच रही दिनकर की त्रिज्या के ऊपर
निसिवासर चन्दा घूम रहा, होकर पागल इस धरती पर
अद्भुत् संयोजन है विधि का, बिन प्यार जगत यह रूखा है
मानव जीवन ही नहीं, सकल संसार प्यार का भूखा है।

● ●

सपने में सपना

•

सपने में भी सपना देखा
उनको मैंने अपना देखा।
रही भावना से जो छूठी, बात कभी न जिसने पूछी,
ऐसी निर्मम मूरत को भी, मैंने बनता अपना देखा
सपने में भी सपना देखा।

बहुत बार अन्दर ही अन्दर,
गुमसुम-सा मैं रहा सिहर कर।
सपने में मैं उससे बोला, जिसको सदा विमुख ही देखा।
सपने में भी सपना देखा ॥

जो क्षण भर भी पास न आया
स्मृति में वह ही घहराया
कितनी अद्भुत् यह विडम्बना, जिसको मैंने फलते देखा।
सपने में भी सपना देखा।

सपना सपना ही होता है
पर, साकार अगर हो जाए।
जेठ, बने सावन का आँगन,
पतझर नव बसंत बन जाए।

• •

इन्द्रधनुषी स्मृति

●

सेमल-सा वह गात तुम्हारा
और इन्द्रधनुषी स्मृतियाँ।
किसी पहाड़ी झील किनारे
मौन-मुखर वे तेरी बतियाँ।

मोरपंख-सी अपलक आँखें
मौन्थी सम अधर तुम्हारे।
शुभ्र ज्योति-सा दिपदिप आनन
केश नाग की प्रतिमा धारे।

कमल-नाल-सी सुन्दर बाहें
काया सुरभित चन्दन वन-सी।
तुम्हीं कहो कैसे मैं भूलूं
ऐसी स्मृति नन्दन वन सी।

जुगनू-सम तारों की टोली
आँख मिचौनी खेल रही थी।
और दूर पर झिल्ली कोई
मंजीरे-सी बोल रही थी।

जल का दर्पण हाथ लिया कर
ताड़ रहा था नभ-फुलवारी।
और भ्रमित मधुकर आया था
देख तुम्हारे तन की क्यारी।

मैंने अपना हाथ बढ़ाकर
तुमको छूना बरज दिया था।
जाने क्यों मैंने अन्जाने
तुमको अपना समझ लिया था।

तुमने मंद-मंद मुस्का कर
था अधरों पर मौन सँवारा।
और उसी पावन स्मृति ने
आज अचानक तुम्हें पुकारा।

ये कवि की काया का गुण है,
मैं अन्तरवाणी सुन लूँगा,
याद करोगे जहाँ कहीं भी
तुमसे आकर वहीं मिलूँगा।

● ●

दीपशिखा-सा रूप

•

दीपशिखा-सा रूप तुम्हारा
और शलभ-सा प्यार हमारा,
सौ-सौ बार जला अर्पित हो
किन्तु न छूटा राग तुम्हारा।

तुमने शैय्या की चादर-सी
धुली धुली-सी ज्योति बिछाई,
केश धुएं-से तुमने खोले
गंध तुम्हारी मुझको आई।

मौन-निमन्त्रण तुमने भेजा
नभ में टिमटिम चमका तारा।
पास तुम्हारे आकर बैठा
किन्तु न टूटा मौन तुम्हारा।

बात सुनी थी, एक गुनी से
मौन किसी का, है आधा मन।
किन्तु तुम्हारे आधे मन को—
भी, अर्पित यह सारा जीवन।

शेष रहा है यदि अब भी कुछ,
कह डालो निर्द्वन्द्व प्रखर हो।
ऐसी भी क्या लाज लपेटी
कह न सको कुछ बात मुखर हो।

अनुभव के बीजों से फूटी
शंका के शूलों की क्यारी
चुभ-चुभ कर कहती है मुझसे
बन न सकेगी बात तुम्हारी।

एक तुम्हारी बात नहीं है
जिससे भी कुछ नेह लगाया
या व्यापार प्यार का पूरा
सबने ही मुझको बहलाया।

झुलस गए पर, मर्यादा के,
दीख रहे पथ सब अँधियारे।
उड़कर और कहाँ अब जाऊँ
शक्ति हुई क्षार, द्वार तुम्हारे।

हार गया मैं जीवन-बाजी,
जब से जागा मोह तुम्हारा।
जन-जन ने उंगली उठवाली
किन्तु न टूटा अहम् तुम्हारा।

दीपशिखा-सा रूप तुम्हारा
और शलभ-सा प्यार हमारा।
सौ सौ बार जला अर्पित हो
किन्तु न छूटा राग तुम्हारा।

● ●

आमन्त्रण

•

जब जब आया शृंगार किए मधुमय वसंत
कलियों ने खुलकर भौरों सँग अभिसार किया।
क्यों अपनाया तुमने अपना जीवन ऐसा
जिसने खुल करके नहीं किसी को प्यार किया।

समरसता जीवन में अब तक तुमने ओढ़ी
अब तो सीखो कुछ ऋतुओं का आदर करना।
थोड़ा सुख ले लो और बाँट दो थोड़ा सुख
आखिर तो हम सबको जगती से है जाना।

एकाकी जीवन की कुण्ठा तुम शेष करो
है पतझर बतलाता वसंत बीता जाता।
आमों के बौरे, बौर नहीं अब हैं रसाल
वनमाली को क्यों नहीं निमन्त्रण है आता ?

जीवन की कड़ियाँ सभी ओर से भौतिक हैं
अध्यात्म कहीं यदि जीवित है, तो काया से।
कितना भी जल को बिना छुए इठलाए जलज
क्या फिर भी बच सकता है जल की माया से !

जीवन ही जिससे बना, बनी काया जिससे
उसके वर्जन की बात स्वयं को धोखा है।
सीधी-सादी है बात सत्य को स्वीकारो
हर जीने वाला रहा प्यार का भूखा है।

आओ हम दोनों बनें परस्पर के पूरक
जीवन की मंजिल पता नहीं कितनी बाकी।
स्वर भरो हमारे साथ, गीत मैं गाता हूँ
मैं दूर क्षितिज पर देख रहा सुन्दर झाँकी।

क्या इससे भी बढ़कर होता है आमन्त्रण !
जब अन्दर-बाहर शहनाई स्वर भरती है।
जाने अंजाने नन्दनवन खिल जाते हैं
शेफ़ाली की हर कली फूल बन झरती है।

इस जीवन को यदि तुमने अर्घ्य बनाया है
अर्पित कर दो दोनों हाथों अपनी थाली।
सूखा जीवन, सिन्दूरी कुसुम बनेगा तब
सूरज सुहाग का, छिटकाएगा जब लाली।

बीता शंका ही शंका में इतना जीवन
साहस ही मंजिल तक सबको ले जाता है
जो सागर के तल तक जाता है दृढ़ होकर
उसके हाथों ही सच्चा मोती आता है।

* *

चरम उपलब्धि

•

संयम की उपलब्धि हमारी
यदि तेरी पूजा-समिधा है
तिल-तिल होम करूँगा अपने—
जीवन की जितनी विविधा है।
चन्दन-तन, कर्पूर-हृदय से
दीप जलाऊँगा मैं तेरा।
मानस के झरते पराग से
अर्घ्य सजाऊँगा मैं तेरा।
दर्शन का दर्शन जब जाना
तब मैंने तुमको पहचाना।
कागज के फूलों में बिखरे—
सम्मोहन का जादू जाना।
अन्तरमन के नन्दनवन में
अब तेरे ही फूल खिलें हैं।
मन के चौराहे पर सहसा
मुझको चारो धाम मिलें हैं।
नैनों को तब दृष्टि मिली है
जब से मैंने तुमको पाया।
तृष्णाओं ने सीमा देखी
तेरे आँगन में जब आया।
जाने कौन मिला सुख मुझको
कर न सका अभिव्यक्त जिसे मैं।
जीवन धारा तेरे संगम से—
बन बैठी एक सुधा है।
संयम की उपलब्धि हमारी, यदि तेरी पूजा-समिधा है
तिल-तिल होम करूँगा अपने जीवन की जितनी विविधा है।

• •

मुस्कान का वर्णन

किसी की क्षण भर की पहचान
बन गई जीवन-भर की साँस।
किसी की पल भर की मुस्कान
बन गयी, जीवन का मधुमास।
वृन्त पर खिले वृन्दतः फूल, क्षणिक ही हँसे, मिल गए धूल,
रहा न किसलय और पराग, किन्तु गन्धों ने भर दी बाग।
किसी की क्षण भर की पहचान, बन गयी जीवनभर की साँस

गगन में घिरे मेघ घनघोर
झर गए झर-झर, नभ झकझोर।
मिली चातक को केवल बूंद
पर, मिटी बारह-मासी प्यास।
सिन्धु के अगम सलिल के बीच, सीप को मिली सीच ही कीच,
मिली जब वारिद की लघु बूंद, पा गयी मुक्ता का परिवास।
किसी की क्षण भर की पहचान बन गयी जीवन भर की साँस

दीखते नभ में नखत अनेक,
सूर्य्य से भी किंचित अतिरेक।
कौमुदी खिली चाँद ही देख
प्रकृति ने अजब रचाया रास।
रूप का नहीं विश्व में काल, झूलती यौवन से हर डाल,
खिला जब नरगिस का लघु फूल, भर गया बुलबुल में मृदुहास।
किसी की क्षण-भर की पहचान, बन गई जीवन भर की साँस
किसी की पल भर की मुस्कान, बन गई जीवन का मधुमास।

अन्जाने की याद

●

तड़पा देती, याद तुम्हारी जब जब आती
मानस में तस्वीर तुम्हारी बन-बन जाती
सुखद क्षणों की एक कल्पना कौंधा करती
पर शंकाएँ हृदय हमारा रौंदा करतीं।

परिचय मेरा तुमसे केवल दृष्टि मिलन का
फिर भी बनता जाता है वह जीवन सम्बल।
जादू अन्जाने पल में यह कैसा फेंका
महाकुम्भ मेले की हिय में जागी हलचल।

हलचल हिय में अन्जाने के प्रति क्यों इतनी
सर में लहरें क्यों उठती हैं सागर जैसी ?
जलधि ज्वार भी तो मयंक को नहीं छू सका
हिय मेरा ही, क्यों फिर फिर रहता भरमाया ?

दिन के सपने रातों के सपनों से गुरुतम्—
रूप धार कर, जाने क्यों मँडराते हरदम।
जीवन की वंशी सासों में सरगम भरती
और न जाने किसके गीत सुनाती हरदम।

याद नहीं वह कौन डगर थी जहाँ मिले थे,
याद नहीं वह कौन नगर था जहाँ मिले थे,
याद यही है मिलन हमारा कहाँ हुआ था,
खोया खोया बेसुध मैं था बेसुध तुम थे।

जवानी वापस ले लो

●

मुझको मेरा भोला भाला बचपन दे दो,
मुझसे मेरी भरी जवानी वापस ले लो।

मैंने जिसको जीवन का संगीत बनाया
जिसको मैंने सपनों का था मीत बनाया
छल गया हूँ मैं उनसे ही, कुछ ना बोलो
मुझसे मेरी भरी जवानी वापस ले लो।

भरी जवानी ने संयम के तट को तोड़ा
मुखर कर दिया वय ने मुझको थोड़ा-थोड़ा
सावन की सरिता को सर में बाँध न पाया,
थी यह ऐसी साध कि जिसको साध न पाया।
भावों के निर्झर में अपना पन खो डाला
जितना था गाम्भीर्य कुछ पलों में धो डाला
बात बनी कुछ नहीं, करूँ क्या ? अम्बर ! बोलो।
मुझसे मेरी भरी जवानी वापस ले लो।

आँख मूँद विश्वास नहीं अब मैं कर पाता,
निःस्पृह होकर प्यार नहीं अब बाँटा जाता।
दृष्टि उठाई जिसने भी, शंका ही घोली
यदा-कदा लोगों ने मुझ पर बोली बोली।
मैं भूतों की परछाईं से खेल रहा हूँ
डण्डीमारों के पलड़े में झूल रहा हूँ
मैं भारी हूँ मुझको बाटों से मत तौलो
मुझसे मेरी भरी जवानी वापस ले लो।

मै जीवन की झझाओं से ऊब चुका हूँ
मै संघर्षों के सागर मे डूब चुका
दूर दूर तक नहीं दीखता मुझे सहारा
तरणी की क्या बात, तृणों ने किया किनारा।
तृण लहरों से आँख मिचौनी खेल रहे हैं
पोत रेत पर सूखे पापड़ बेल रहे हैं।
किससे कहूँ जलन की बातें बोलो बोलो ?
मुझसे मेरी भरी जवानी वापस ले लो।

बचपन में बहनों की गोदी में खेला हूँ
बहनों से की बात, साथ घूमा मेला हूँ।
जब जब उमड़ा प्यार, गाल पर प्यार मिला था
वही प्यार अब बना न जाने कौन बला है!

कल की बातें आज नहीं होती मनमानी
बन्धन में क्यों बँधा, हाय जब मिली जवानी।
मुक्त मुक्त संसार और वह बचपन दे दो
मुझ से मेरी भरी जवानी वापस ले लो।

मुझको मेरा भोला भाला बचपन दे दो
मुझसे मेरी भरी जवानी वापस ले लो।

● ●

अरे वह कौन चली आती !

मेरे सपनों में मौन,
मचलती, मदमाती, इठलाती, गाती, इतराती,
कविता-वाणी में झूल, रंच-सी बलखाती,
वह कौन चली आती !

शरद-काल सी धवल चाँदनी,
प्रेमाम्बर से हिय-आँगन में—
उतर, लिये उन्मीलित लोचन
हृदय-पटल पर कौन बिछी जाती ?

कवि-वाणी के वक्ष-लक्ष्य में
सुन्दरतम वह निपट अकेली
पैठ रही सर-सर-सर शर बन,
दृष्टि नहीं पाती ।

प्रहरी बन कर हृदय-कोष को
लुटा रहा बिन मोल,
निकलता नहीं अरे कुछ बोल;
बोलना पाप, शब्द अभिशाप
बने जाते हैं आपने आप
अरे ! जादू करती आती ।

जानता हूँ, पर क्यों अनजान,
बिधाये देता प्रण में प्राण ।
स्वयम् से हुआ स्वयम् अवछिन्न
कर रहा निज जीवन का दान
पहेली-सी बनती जाती !

कुतूहल बढ़ा, गुदगुदी मचा
निरन्तर लिखने का क्रम रचा,
ज्वार-सा मानस पर चढ़ नित्य
कलम से कौन उतर जाती ?

हमारे जीवन में रमती,
हिम-कणों सी हिय पर जमती,
रूप दे कवि का वह बरबस
काव्य में अनजाने बहती ।

सींचती भावों की क्यारी,
विकसते कथा-फूल बहु रंग;
रंग में नव-जीवन की गन्ध---
लिये वह कौन चली आती ?

लेखनी देख हमारी रिक्त,
शब्द के पहन आवरण नित्य,
भावना के सागर में डूब
तरनि-कविता पर हो आरूढ़
प्रेयसि सम कौन चली आती !
अरे वह कौन चली आती ।

• •

प्यार का बादल

•

धवल चाँदनी ने मुख फेरा
अलकों ने अम्बर को घेरा
केश-मेघ में छिपी कोटरी
नहा रही है स्नात नभचरी।

अलकों से झरता जल झर झर
वर्षा का स्वर गूँजा, मरमर
निज कल्मष से नश्वर होकर
गिरे धरा पर जलधर हर हर।

उमगी जल-धारा पुष्कर पर
नभ खण्डित कर उतरी भू पर
छूटे नभ से अगणित जल-शर
गुल्म बन गये पर, धरती पर।

तड़ित अभ्र से भाग रही है
मानिन-सी वह जाग रही है
फिर फिर नभ-शय्या पर जलधर
प्रिया सुलाता बाहों में भर;
और छूट जाता जब बन्धन
अश्रु कलश ढरकाता तब घन।

दूर दूर तक झरते बादल
घटता उसके कल्मष का बल
केहर-सम पुनि चलती सर-सर
करतल ध्वनि करते सब तरुवर
फैली मेघ-धार धरती पर
बिखर गए झर, सरित, सिन्धु, सर।

• •

यादों के झरोखे

●

जब जब विहँसी
शरद् चाँदनी
तन में जागी—
तेरी माया
जब जब महकी रात केतकी
वरण हो गयी—
तेरी काया।

जब जब दर्पण—
सम्मुख आया
तेरे अपलक नैन निहारे
जब जब बोली—
झुरमुट में पिक
श्रवण हो गए बैन तुम्हारे।

सावन के काले मेघों में
केश तुम्हारे उड़ते देखे।
दूर क्षितिज के धूमिल पट में
बिछड़े तन फिर जुड़ते देखे।

दूर रहा मैं तुमसे, फिर भी
कवि-काया में
भटक रहा हूँ
जीवन का ऐतार्थ भूल कर
परछाईं से
अटक रहा हूँ।
जब जब विहँसी शरद चाँदनी

● ●

मिलन-यामिनी

●

पुरुष—यह सोने की रात नहीं
सोने की !

नारी—यह सोने की रात नहीं, सोने को।

पुरुष—कितनी रातें बीत गईं
दिन कितने आए चले गए
फागुन की ऋतु आई कितनी
कितने सावन चले गए
बीत गए पच्चीस वर्ष
पर यह शुभ घड़ी नहीं आई।

नारी—वर्ष अठारह बीत गए
पर यह शुभ घड़ी नहीं आई

पुरुष—यह सोने की रात नहीं
सोने की।

नारी—यह सोने की रात नहीं, सोने की।

पुरुष—आज एक टक खोल नैन
मुख देख रहा हूँ।

नारी—आज एक टक खोल नैन
मुख देख रही हूँ।

पुरुष—हर मुस्कान फूल-सा झरना
आंक रहा हूँ।

नारी—हर मुस्कान फूल-सा झरना
आंक रही हूँ।

दोनों—आज अनोखी रात प्रिये !
यह रात नहीं खोने की,
यह सोने की रात नहीं, सोने की।

पुरुष—आज चाँदनी खिली हुई है
चिर यौवनमय।

नारी—आज गगन में चाँद खिला है
चिर पौरुषमय।

पुरुष—आज बिना मदिरा के यह तन
झूम रहा है।

नारी—आज विश्व का सारा वैभव
पास धरा है।

दोनों—आओ बाँटें प्यार,
घड़ी सुधबुध खोने की,
यह सोने की रात,
नहीं, सोने की।

पुरुष—नहीं आज की रात
कभी भी फिर आएगी।

नारी—अतः हमेशा याद हमें
इसकी आयेगी।

पुरुष—क्षण ये मिलन-यामिनी के हैं
घड़ी एक नहीं खोने की।

नारी—क्षण ये मिलन-यामिनी के हैं
घड़ी एक नहीं खोने की।

दोनों—यह सोने की रात,
नहीं सोने की
यह सोने की रात नहीं
सोने की।

• •

रूप की चाँदनी

*

चाँदनी का फूल था विकसित हुआ,
मौन दो भँवरे वहाँ थे डोलते।
मोतियों की पंक्ति से दीपित हुए,
बिम्ब मूँगे के, वहाँ थे बोलते।

केसरी रँग भाल पर था खेलता,
लाल टीका बीच में देदीप्य था
थी कपोलों पर छिटकती अरुणिमा,
किसी उगते सूर्य का सामीप्य था।

थे सुनहले फूल केशों में बँधे,
ज्यों अमावस में दिवाली हो सजी।
कर्ण में थे फुलझड़ी के वृत्त दो,
कुन्तलों से नागिनें थीं झूलतीं।

देख कर जादू भरे इस दृश्य को
दो घड़ी के वास्ते मैं रुक गया।
अहम् मेरा उड़ रहा था गरुण-सा,
नागिनों को देखकर पर झुक गया।

बच के मैं देखूँ उन्हें, या लूँ पकड़,
मन्त्रणा जो दे, यहाँ पर कौन है?
प्यार का अतिरेक है जागा हुआ,
तर्क का प्रहरी यहाँ पर मौन है।

इस वयस में भी किसी के रूप पर,
मैं हुआ मोहित अजब कुछ बात है।
छवि किसी की डस गयी है इस तरह,
बहुत तड़पा हूँ कठिन आघात है।

जैन कवि जिनसेन था मोहित हुआ—
महापावन देवि 'मरु' के रूप पर।
रहे कालीदास मर्यादित नहीं
जगत-जननी उमा के अभिरूप पर।

मैं अकिंचन कवि-हृदय मारा गया
चाँदनी सम रूप की असि-धार पर।
कौन है जो घाव को सहला सके,
और आँचल को झले कुछ प्यार से।

• •

कवि हृदय की व्यंजना

मैं बना दुष्यन्त जिसके रूप का
मेनका की उस कली को है नमन।
भावना दावाग्नि-सी दीपित हुई,
कर न पाया इसलिए उसका शमन।

रूप का जादू चला इतना प्रखर,
हो गया हतप्रभ, जमूरा हो गया।
इन्द्र के अभिमान में था जी रहा,
पर अचानक एक बौना हो गया।

चाहने को चाहता कुछ भी नहीं
हँस के दो क्षण बात कर पाऊँ जरा।
कुछ नया लिक्खूँ तो वह हँसकर सुने,
और अपने शब्द से दे प्रेरणा।

उत्कर्ष के आधार की तलाश

●

गा सको यदि तुम हमारे गीत को,
साधना मेरी छुए आकाश को।
कल्पनाएँ अवतरित होने लगें,
नाप लूँ मैं क्षितिज के विस्तार को।

तुम हमारे गीत को यदि गा सको,
एक जादू-सा नया, जगने लगे।
मन्दिरों की मूर्ति नर्तन कर उठें,
अप्सरा पाषाण की गाने लगें।

तुम हमारे गीत को यदि गा सको,
हृदय के आकाश के तारे सजें।
चाँद से केवल न टपके चाँदनी,
चाँदनी में प्यार के सरगम बजें।

गा सको यदि तुम हमारे गीत को,
मैं बनूं नट राज इस संसार में।
सूर्य्य-सा मैं गगन में नर्तन करूँ,
ग्रह सभी नाचें हमारे ताल में।

गा सको यदि तुम हमारे गीत को,
साधना मेरी छुए आकाश को।
कल्पनाएँ अवतरित होने लगें,
नाप लूँ मैं क्षितिज के विस्तार को।

● ●

सम्बल की खोज

●

तुम मुझको सम्बोधन दे दो
मुझको उद्बोधन मिल जाए।
जड़ताएँ सब जड़ हो जाएँ
तन को चेतनता मिल जाए।

क्षमताएँ बहुतों में होतीं
किन्तु उजागर कुछ की होतीं।
तुमसे इंगित मुझे मिले तो
मेरी क्षमता नभ फहराए।

जाने क्या क्या कर जाने को
कभी कभी मन विचलित होता।
तुम मुझसे कुछ आशा कर लो
मुझमें जानें क्या हो जाए।

दिशाहीन मैं भटक रहा हूँ
बहुत दिनों से बिना सहारा।
तुम मुझको सम्बोधन दो, तो
मुझको एक दिशा मिल जाए।

जाने किसके किसके ताने,
समय समय पर सुनता आया।
तुम अपनी करुणा भर दे दो
राग-द्वेश का मुँह सिल जाये।

मुझको लोगों ने नगण्य कह
बहुत जगह उपहास किया है।
तुम मुझको कुछ सम्बल दे दो,
मुझे अकल्पित यश मिल जाये।

छुपे रहे तुम मुझसे जब तक,
रहा अजाना अपनेपन से।
तुम ऐसा कुछ जादू कर दो,
मुझको अपना नभ मिल जाए।

तुम मुझको सम्बोधन दे दो
मुझको उद्‌बोधन मिल जाए।
जड़ताएँ सब जड़ हो जाएँ
तन को चेतनता मिल जाए।

● ●

फागुनी परिवेश और मैं

●

फागुनी मादक हवा बहने लगी
वाटिका के वसन भड़कीले हुए ।
ऊष्मा में गंध मद गरमा गए
गुलमुहर के फूल चटकीले हुए ।

खिलती है फाग फूलों से प्रकृति
गात फूलों के रंगे बहुरंग के ।
गंध मादक छिड़क दी सब में पृथक
हैं अनोखे रूप मद के अंग के ।

खेत में सरसों जवानी पर चढ़ी
लगा टेसू फूलने हर रात में ।
बौर बौराए बसंती वात से
मदन जागा हर किसी के गात में ।

बनी यायावर मधुप की टोलियाँ
कृष्ण आए कान्ताओं की गली ।
कामिनी में काम कम्पित यूँ हुआ
खिल गई कचनार की कच्ची कली ।

गाँव की अमराइयों के बीच में
बालिकाएं डोलती इमली तले ।
बहुत मादक गंध महुआ दे रहा
बेल, कैथे नव उरोजों से फले ।

परिभ्रमण, परिभोग के परिभ्रंश से
हो गया परिमलमयी वातावरण ।
गात में जागे हुए उद्दीप से
कामना पर काम का है अवतरण ।

इस घड़ी सम्भव नहीं इसका शमन
सो गया सबका विवेकी देवता ।
धौंकनी है आग, फागुन की हवा,
मैं अवश हो दृश्य सारे देखता ।

इस प्रहर, निज वाम में वामा नहीं
विषम स्थिति और इससे कौन ? ?
प्रश्न करता हूँ स्वयं से मैं स्वयं
किन्तु मेरा स्वयं मुझमें मौन है ।

फागुनी मादक हवा बहने लगी,
वाटिका के वसन भड़कीले हुए ।
ऊष्मा से रंध्र सब गरमा गए,
गुल मुहर के फूल चटकीले हुए ।

● ●

फूल जहाँ खिलते हैं

●

फूल जहाँ खिलते हैं
बाग़ वहीं बनता है
गीत जहाँ मिलते हैं
राग वहीं पलता है
राग जहाँ पलता है
प्यार वहीं जगता है
प्यार जहाँ जगता है
स्वर्ग वहीं बनता है

फूल जहाँ खिलते हैं
बाग़ वहीं बनता है
फूल जहाँ खिलते हैं
बाग़ वहीं बनता हैं

बाग़ जहाँ बनता है
लोग वहीं आते हैं
ठंडी-ठंडी छाहों में
कुछ सुकून पाते हैं
जब सुकून पाते हैं
लोग गुनगुनाते हैं
साथ हुआ गर .प्रेमी
प्यार को जताते हैं

प्यार को जताने में
गीत नहीं गा पाते
मुख से नहीं कहते कुछ
दृष्टि से बताते हैं

दृष्टि से बताने में
होंठ को चबाते है।
बात बस वही कहते
जो सदा छुपाते हैं

बाग जहाँ बनता है
लोग वहीं आते हैं
बाग जहाँ बनता है
लोग वहीं आते हैं

लोग वहीं आते हैं
स्वप्न जहाँ पलता है
कल्पना के घोड़ों पर
प्यार सदा चलता है
फूल जहाँ खिलते हैं
बाग वहीं बनता है
गीत जहाँ मिलते हैं
राग वहीं पलता है।

• •

व्यथा एवं वियोग के गीत

जीवन में व्रण बहुत मिले हैं
किसकी किसकी पीर सहूँ मैं?

तन के व्रण की बहुत सुधा है
मन के व्रण की क्या औषधि है?

कायिक - जीवन परिसीमित है
अन्तर्मन की परिधि नहीं है।

सुख सीमित है मिलन क्षणों में
पर वियोग के क्षण असीम हैं।

● ●

खोया हुआ मीत

•

यहाँ है कौन हमारा मीत ?
सुनाऊँ जिसको लिखकर गीत !
सुनहले थे कुछ दिन दो-चार,
समय के साथ गए जो बीत ।

नदी का जैसे बहता नीर
छोड़ता बढ़ता, दोनों तीर ।
समय भी निष्ठुरता को पाल
दे गया मुझको दुःखती पीर ।

गया अभिसार समय अब रीत,
समय से कौन सका है जीत ?
नहीं अब आ सकते क्षण लौट,
आयु के साथ गए जो बीत ।
यहाँ है कौन हमारा मीत ?

• •

मौत की स्मृति

*

ज़िन्दगी का रथ सजा कर हाट पर
मौत को ले साथ मैं था जा रहा
नियति ने घेरा मुझे पाकर निबल
और मैं आधी डगर में लुट गया।

कुछ खिलौने थे खरीदे राह में
स्नेह का आँचल उन्हें था ढक रहा,
रह गए, अब सब सूने आकाश में
भ्रमित मैं, असहाय निज कर मल रहा।

इक लगा था डूब कर जिसमें सदा
गुनगुनाता गीत था, हर साँस में
सामञ्ज मेरा गया, मुझसे ढुलक,
और मैं गतिभंग होकर रह गया।

यह सिसकती रात कोहरे से भरी
सड़क सन्नाटी, दिशा ,अन्जान सी,
हड्डियों को चीरती सनसन हवा
पंथ को अवरुद्ध करती जा रही।

इस दशा में मैं भटक जाऊँ नहीं
इसलिए आवाज़ दो आकाश से।
बादलों के पार भी आजाऊँगा
एक कवि की आस्था से कह रहा।

अब सितारों पर दुपट्टा डाल दो
माँग के मोती न दिखलाई पड़ें,
चाँद को आने न दो आकाश पर
व्यर्थ पहली रात का होगा भरम।

ज़िन्दगी का रथ अभी गतिमान है
कौन जाने पंथ कितना शेष है।
कह रही है किन्तु मेरी आस्था
हम मिलेंगे किसी क्षिति, की छोर पर

यह जनम होगा, या कोई दूसरा
पृथक मुझसे हो सकोगे तुम नहीं,
कल्प के भी अन्त तक चलते हुए
मीत अपना मैं बदल सकता नहीं।

● ●

मँडवे में आग

●

जिस आँगन के मँडवे में हो लग गई आग
उस आँगन से शहनाई की धुन मत मांगो।
जिस बगिया में बिन मौसम पतझर आ जाए
उस बगिया के माली से गजरे मत मांगो।

मैंने भी मौर सजाकर, भांवर फेरी थी।
हर भांवर पर मैंने सौ स्वप्न सजाए थे।
कवि-काया में जितने सरगम बज सकते थे
उसके सुर में, मैंने सौ बिगुल बजाए थे।

पर सम पर आते ही ऐसी रुक गई सांस
हो गया व्यर्थ सारा सरगम, आलाप, तान।
लुट गई राह में डोली सुन्दर सजी हुई
हो जायेगा ऐसा भी, कब था मुझे भान!

मैं उस तरणी का नाविक हूँ जो डूब गई,
मैं नायक हूँ उस गाथा का जो पूर्ण नहीं,
मैं बुझा हुआ दीपक हूँ उस अंधियारे का
जिसमें आँधी ऐसी आई जो रुकी नहीं।

क्षत-विक्षत हैं मेरे पथ के साथी सारे,
मैं किसकी किसकी चोटों पर पट्टी बाँधूं!
सबसे ज्यादा हूँ घायल मैं ही कौन सुने?
किसकी बाहों को पाकर मैं निजको साधूँ?

मरघट की बातें करने का जी होता है
पनघट के गीत नहीं कानों को अब भाते।
मैं फूल, राख में सने हुए हूँ बांट रहा,
तुम तारों की झोली दिखला, मन भरमाते!

कैसे स्वीकारूँ अब पूजन आराधन को
ऐसा मन्दिर हूँ शेष कि जिसमें मूर्ति नहीं ।
सन्नाटा ही सन्नाटा है अब जीवन में
ऐसी क्षति मेरी हुई कि जिसकी पूर्ति नहीं ।

फागुन आया सबको फगनाई सूझ रही
रसिया होली के, ढोंग हजारों हैं सजने ।
मैंने पहना है काला बाना निज तन पर
मेरे कानों में ढोल मोहर्रम के बजने ।

होली, दीवाली, ईद, क्रिसमस, बैसाखी
वर्षों में नहीं, मनाते थे हम नित्य प्रात ।
है घूम गया अपना ऐसा कुछ समय चक्र
अब तरस रहा हूँ करने को दो घड़ी बात ।

जिस आँगन के मँडवे में ही लग गई आग ।।

● ●

मलाल

●

मैं तुम्हारे लिये बनवा न सका ताजमहल
इसके माने ये नहीं तुमसे मुझे प्यार न था।
मेरी आँखों का आवशार बहर बन न सका
इसके माने ये नहीं आँख में गुबार न था।

मुस्करा कर तेरी तस्वीर ने पर्दा न किया,
इसके माने ये नहीं उसमें कोई बात न हो।
मेरे आगोश में जब से नहीं छुपने वाला,
इसके माने ये नहीं तब से कोई रात न हो।

भूलने के लिए दुनियाँ में बहुत कुछ भूला,
इसके माने ये नही चाँद की सूरत भूलूं।
मैंने हाफ़िज के फलसफ़ों से बहुत खेला है,
इसके माने ये नहीं, रूह मैं अपनी छू लूं।

लोग कहते हैं कि दुनियाँ में अभी जिन्दा हूँ,
इसके माने ये नहीं ईद मनाता हूँ मैं।
गुन गुनाता हूँ अगर हिज्र के गाने अक्सर
इसके माने ये नहीं बज़्म सजाता हूँ मैं।

तुम तस्व्वुर में अगर राज़ बन के रह न सके,
इसके माने ये नहीं तोड़ दूँ बुतखाने को
मेरी बेहोशियाँ गर जाम तेरा भर न सकीं
इसके माने ये नहीं तोड़ दूँ पैमाने को।
मैं तुम्हारे लिये बनवा न सका ताजमहल ॥

● ●

जिन्दगी की कश्मोकश

•

हसरत के सितारों से सौ बार हूँ खेला
लेकिन वे खिलौनों की तरह हरदफे टूटे।

तुमने कहा था जिन्दगी दो दिन के लिए है
मैं उम्र से ये जिन्दगी अब नाप रहा हूँ।

तुम हम-सफ़र थे और मैं मंज़िल की तरफ़ था
मंज़िल का राज तब खुला, जब तुम चले गए।

तुम साथ चले, साथ में चलती गई बहार
तुम छुप गए, हर सिम्त बियावान हो गयी।

जब से गए हो तुम, कोई हमदम नहीं मिला
हमदम वही बने जो स्वयं जी नहीं सकते।

• •

इशारे की बात

यूँ तो बहुतों के रूप पहले भी देखे मैंने
पर किसी रूप का जादू नहीं चलने पाया।
जब से चिलमन के झरोखों से झलक उनकी मिली
बा-खबर होते हुए खुद को बे-खबर पाया।

रू-ब-रू हो के बहुत बार बनाई बातें
बात का उनपे असर हो तो कोई बात बनें
आँख उठने के लिए आँख उठी बहुतों की,
आँख जब उनकी उठे तब तो कोई बात बने।

हमको मालूम है चर्चा है हमारी भी कहीं,
उनके मुँह में भी मेरी बात हो तो बात बने।
यूँ तो सोहबत के लिए ठौर-ठिकाने हैं बहुत,
उनकी सोहबत जो मिले तब तो कोई बात बने।

कौन वे हैं ये बताऊँ तो बताऊँ कैसे ?
खुद-ब-खुद वे ही कुछ बढ़ आएँ तो कुछ बात बनें
एक शायर हूँ इशारे से बात करता हूँ,
शायरी उनके समझ आए तो कुछ बात बनें।

अदृश्य प्यार

•

पवन में रहती विलय ज्यूँ सुरभि है,
निहित है ज्यूँ ताप चंचल किरन में।
प्यार तेरा गात में वह है छिपा
किसी क्षण पर था मिला जो मिलन में।

त्याग ज्यूँ अनुराग बिन सम्भव नहीं,
साध के बिन सिद्धि सम्भावित नहीं,
जलन के बिन ज्योति ज्यों जलती नहीं
बिन तुम्हारे सुखद दिन कल्पित नहीं।

भाव के बिन लेख ज्यूँ कविता नहीं,
राग ज्यूँ बिन स्वरों के बजता नहीं,
आत्मा बिन, गात ज्यों शोभित नहीं,
बिन तुम्हारे मैं कभी सजता नहीं।

जी रहा हूँ मैं कि जीना धर्म है
और बिन चाहे जिया, यह मर्म है।
विश्व को इस मर्म से क्या वास्ता?
पर, व्यथा-अभिव्यक्ति ही कवि कर्म है।

तुम गगन से भी मुझे यदि देख लो
मैं धरा पर खिल उठूँगा कमल-सा,
और यदि संकेत दो अभिसार का
चाँदनी में मैं नहाऊँ रात भर।

• •

विधुर की पाती विधवा के नाम

●

मृत हो गयी हो जब प्रज्ञा
उसे जगाना बहुत कठिन है।
विषम क्षणों में प्यार जगे तो
उसे जलाना बहुत कठिन है।

प्रेयसि के हों पुत्र-पुत्रियाँ
घर बैठा हो नया जमाई।
अपने घर में स्वागत बाने हों
पुत्र वधू-नव हो घर आई।

ऐसी स्थिति में छिप छिपकर
पाती लिखना बहुत कठिन है
और अगर लिख भी जाये तो
प्रेषण उसका और कठिन है।

बचकर किसी तरह बच्चों से
यह पाती तुमको लिखता हूँ।
क्योंकि फागुन का यह मौसम
नहीं अकेले सह सकता हूँ।

तुम्हें देखकर मेरे अन्दर
प्यार भरा दीपक जलता है।
हृदय फड़कना पर्दे जैसा
और एक सरगम बजता है।

जाने कैसा गात हमारा
रह रहकर हमको छलता है।
जरा मुखर हो मुझे बताओ
तुमको भी क्या कुछ खलता है ?

तुम ही जानों अपने मन की
मैंने तो मर्यादा तोड़ी।
क्या तुम भी होकर स्वाभाविक
मुझसे बना सकोगी जोड़ी ?

मैं मानव हूँ मानव की काया—
के सपनों में पलता हूँ।
जीवन के एकाकीपन से
कभी बहुत विचलित होता हूँ

शायद तुमको भी ऐसे क्षण
सूने सूने से लगते हों
और कभी गत भोगे सुख के
सोए सपन जग उठते हों।

ऐसे क्षण में हम दोनों यदि
जीवन को कुछ सरस बनाएँ।
और कहानी भूल दुःखों की
हम भी थोड़ा-सा मुस्काएँ।

इसमें क्या आपत्ति तुम्हें है
ठण्डे मन से तुम समझाओ।
मैंने तुमको दिया निमन्त्रण
तुम अब अपना हाथ बढ़ाओ।

कठिन लग रहा हो यदि उत्तर
तो कविता में उत्तर दे दो।
अगर नहीं लिख सकतीं कविता
तो प्रयोगवाद में लिख दो।

मुझ तक प्रेषण करने के हित
दैनिक में उसको छपवाना।
कठिनाई इसमें भी हो यदि
तुम संकेत मुझे भिजवाना।

मैं बारात लिए होली की
आ जाऊँगा, द्वार तुम्हारे।
रँग की पुड़िया में रख कविता
फिकवा देना पास हमारे।

मैं पाठक हूँ संकेतों का,
थोड़े में हूँ बहुत समझता।
तुम अपनी कुण्ठाएँ छोड़ो
मैं तुमको आमन्त्रण देता।

● ●

नीरव क्षण

●

तुम नहीं तो विश्व सारा एक जंगल हो गया है
सड़क के सब लोग जैसे स्वान बनकर भूंकते हैं।
लड़खड़ा कर यदि किसी की
बाँह गहना चाहता हूँ
देखकर उपक्रम हमारे लोग चुपचुप थूंकते हैं।

आयु बीती बहुत फिर भी,
विश्व के व्यवहार से मैं,
एक बालक-सम
अनाड़ी का अनाड़ी
रह गया हूँ।
साथ में सम्पत्ति जो थी,
लुट गई जाने कहाँ पर,
दांव पर रक्खे बिना, हारा जुआड़ी रह गया हूँ।

द्रवित मुझ पर नहीं कोई,
नहीं सम्बल है किसी का।
घूरते हैं लोग केवल
दृष्टि भर-भर घूरते हैं।
चुभ गए जो शूल उनकी परिधि बढ़ती जा रही है;
नहीं मिलते वैद्य मुझको
घाव को जो पूरते हैं।

तुम नहीं तो विश्व सारा एक जंगल हो गया है
सड़क के सब लोग जैसे स्वान बन कर भूंकते हैं।

● ●

यथार्थ का अंकन

•

दुनियाँ कहता प्यार जिसे है
वह मेरे हित पाप बन गया।
जो वरदान बना दुनियाँ को
वह मुझको अभिशाप बन गया।

वही गान है वही हृदय है
किन्तु नहीं परिवेश पुराना।
मात्र इसी कारण के कारण
सोच गए सब मुझे विराना।

मैंने खोया है ऐसा कुछ
जिसका पूरक ढूढ़ रहा हूँ।
दुनियाँ वालों तुम्हीं बताओ
मैं मानव हूँ या पत्थर हूँ।

यदि मानव हूँ तो मुझमें भी
मानव जैसे भाव जगेंगे।
मानव हूँ तो मुझमें भी तो
समय-समय के फूल खिलेंगे।

यदि मानव हूँ तो मुझमें भी
भाव उड़ेंगे बादल जैसे।
मानव हूँ यदि तो मेरे भी
गीत रचेंगे कवियों जैसे।

मैंने पायी कवि की काया
शुभ्र कमल-सा खिला हुआ हूँ
मेरे अन्तस को तो झांको
पारिजात-सा महक रहा हूँ

नये फूल खिलेंगे जब जब
धरती पर वे बिछ जाएँगे।
आँचल में यदि कोई लेगा
तो आँचल को महकाएँगे।

मैं तो अपनी बात मुखर हो
दुनियाँ के सम्मुख रखता हूँ।
फिर भी कोई समझ न पाए
तो बोलो, क्या कर सकता हूँ?

बड़े बड़े संतों की गाथा
पण्डित लोग सुनाते मुझको।
और बिना रत्ना के देखो
तुलसीदास बनाते मुझको।

जाने मेरा क्या दर्शन है
मैं बैराग नहीं ले पाता।
मुझको गुड्डा गुड़िया भाते
जाने क्यों संसार सुहाता।

हाड़ मास की मेरी काया—
पत्थर अगर नहीं बन पायी,
ओ समाज के ठेकेदारों
तुमने क्यों सीखी निठुरायी?

मैं कैदी हूँ खुले गगन में
कैसी अद्भुत विडम्बना है।
मैं जंगल में घिरा खड़ा हूँ
कोहरा चारों ओर घना है

ढूंढ़ रहा हूँ किरण एक मैं
जो पथ को आलोकित कर दे।
थोड़ा सा अपनत्व दिखाकर,
मुझमें नई प्रेरणा भर दे।

नित प्रेरक की रही भूमिका,
जीवन का यह कटु यथार्थ है।
मानव का एकाकी जीवन
टूटे पहिये वाला रथ है।

मन चंचल है अश्व सरीखा,
किन्तु परिस्थित धुरीहीन है।
बिना केकई का दशरथ हूँ
युद्ध-क्षेत्र में दिशाहीन हूँ,

अथवा, कुरुक्षेत्र में आकर
मैं अर्जुन-सा भ्रमित हो रहा।
नहीं सारथी कृष्ण सरीखा
इसीलिए दिग्भ्रमित हो रहा।

नर भी मैं नारायण भी मैं
मेरी गीता मेरे अन्दर।
भेद नहीं है मुझमें कोई
जैसा भीतर वैसा बाहर।

मैं जैसा अनुभव करता हूँ
दर्पण-सा बिम्बित करता हूँ।
मैंने पायी कवि की काया
मैं यथार्थ अंकित करता हूँ।

• •

दया की याचना

•

मन को साध-साध कर मैंने
काट दिये हैं दिन लहरों के।
अब जाने क्यों डर लगता है
तट पर आकर डूब न जाऊँ।

तन की ज्वाला साधक बनकर
नित्य शमित मैं करता आया।
शेष बची जो चिंगारी है
भस्म न उससे मैं हो जाऊँ।

संयत जीवन हो अभिषेकित,
मर्यादा अक्षुण्ण रह जाये।
मुझको कुछ ऐसा विवेक दो,
मैं प्रामद से छला न जाऊँ।

तरह तरह की भूखें जगती
रहती है मानव के तन में।
ऐसी भूख जगे क्यों मुझमें
जिसका ग्रास स्वयं बन जाऊँ।

क्षमा बचपने को मिलती है
हैं प्रमाद के क्षण यौवन के।
मुझे छूट अब कहाँ मिलेगी
भूल, भूल से भी कर जाऊँ।

सब कुछ समझ रहा हूँ लेकिन
मन का कलुष नहीं मिटता है।
मात्र दया मुझ पर तुम करना,
कुछ अवांछित यदि कर जाऊँ।

• •

स्वप्न की स्वप्न

•

धूप देखी और देखी चाँदनी,
किन्तु
बाहों में पकड़ पाया नहीं

रूप देखा और देखी कामिनी,
किन्तु
जीवन में रमा पाया नहीं ।

स्वप्न देखा और यश का मंच भी,
किन्तु
तृष्णा को मिटा पाया नहीं ।

पुञ्ज देखा और उसका तेज भी,
किन्तु,
उसका अंश ले पाया नहीं ।

क्या कहूँ, क्या-क्या न देखा विश्व में
किन्तु,
अपने हाथ कुछ आया नहीं ।

• •

श्रद्धा के गीत

जिनके यश ने पथ आलोकित कर
मुझको गंतव्य दिया है,
उनके चरणों में मैं अपने
श्रद्धा-सुमन भेंट करता हूँ।

दिशा-दिशा
नए प्रसून गन्ध से गमक उठी ।
कथा अवध-नरेश की
दिगन्त में समा गयी ।
विभिन्न देश में हुआ
समाज का गठन पृथक,
अनेक संत, कंत भी हुए सभी समाज में ।
मगर न मिल सका —
कहीं स्वरूप उस समाज का
प्रतीक जिस समाज के दिए हैं राम-राज्य में ।
अनादि से सहस्त्र पुत्र
जन रही वसुन्धरा,
हुए अनेक साधु, संत भी समस्त देश में ।
मगर ये श्रेय है हमें
कि तू यहाँ प्रकट हुआ,
समस्त विश्व के सृजन-गगन में, इन्दु बन गया ।

● ●

कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति

●

हे प्रतिभा के सूर्य्य !
कला के चाँद !
पूर्व के संत अनागत ।
हे वाणी के पुत्र, वीण के तार, शान्ति के नए तथागत !

हे सृष्टा के ओज,
काव्य के श्रोत
गीति-परिमल के निर्झर ।
हे लेखन के शौर्य्य, साध के मौर्य्य, सिद्धि के शिखर परागत !

हे मनु-कानन-कमल !
कृष्ण, जन-गण-दर्शन के ।
हे भावों के सिंधु !
मेघ, शत-रस-वर्षण के !

भारत के विद्वत्समाज के भाल-श्री हे !
जग-विप्लव में ललित-कला की तरणि चाप हे !
तेरे यश से,
यह युग भी बन गया यशस्वी ।
तेरे तप से
फिर भारत बन गया तपस्वी ।

गीतों की अंजलि तेरी गूँजी कर्णों पर
विश्व नमित हो गया आज तेरे चरणों पर ।

● ●

मैथिलीशरण गुप्त के प्रति

●

युग पुरुष पुरुषोत्तम—श्री राम का प्रतिमान बनकर
पूजना जिसने—
जगत के मानवों को, श्रेष्ठ समझा,
लेखनी के उस धुरन्धर महाकवि को नमन मेरा।

सच कहूँ तो—
एक तुलसीदास, हमको फिर मिला था
राम के व्यक्तित्व का ही, जो लगाता रहा फेरा।
भावना से
महामानव !
सृजन का था अंशुमाली,
वैष्णव का शुद्ध दर्पण
और यश में उच्च भाली।
आस्था का ध्रुव,
बृहस्पति कल्पना का,
राष्ट्र का प्रहरी
कुसुम था अर्चना का।
ढूँढ़कर उसने दिए आदर्श वे—
निज पुस्तकों में।
ज्योति के स्तम्भ ज्यों देते दिशा—
सागर किनारे।
वेश-भूषा और वाणी में रही जिसके सरलता
स्वयं था उपमा स्वयं की सादगी का।

मैं नमन उस राष्ट्र कवि को दे रहा हूँ
नाम जिसका हुआ व्यापक 'गुप्त' होकर।

● ●

महाप्राण निराला के प्रति

•

चलता फिरता तीर्थ निराला, जहाँ रमा
दूर दूर के यात्रिक घिरते वहीं रहे।
भक्तों की क्या बात, शारदा देवी के—
चरणों के नूपुर ने भी स्वर वहीं भरे।

हमको ऐसा तीर्थ-निराला बन्द हुआ
'शोषित' जिसके मन-मन्दिर का देव बना।
पूज सकें वे देव अगर, तो हम पूजें
सरल, सलोने, भोले मानव धरती के।

उसके राजा और देवता श्रमिक रहे,
इसीलिये उनका प्रतीक वह बना रहा।
लेखन में व्यापारी बन कर झुका नहीं,
टूट गया पर अन्त समय तक तना रहा।

मानव रूप निराला ऐसा पारस था
परस हुआ जो, स्वर्ण-दीप-सा दमक उठा।
उडुगण का भी रूप लिये जो भी आया
दिनकर की आभा से चमचम चमक उठा।

शब्द 'निराला' बोध हमें जो देता है,
समता हमको उस रूपक की मिली नहीं।
अद्‌भुत है उपमेय कि उपमा लुप्त हुई
जैसे शंकर का प्रतीक उपलब्ध नहीं।
भौतिक स्वर में सूर्य्यकान्त हो गया अस्त,
किन्तु साधना के मन्दिर में प्रखर हुआ।
वाणी की किरणें घर-घर में गयीं उतर
जन जन के मुख से कवि का स्वर मुखर हुआ।

• •

निराला के व्यक्तित्व के प्रति

युग पुरुष !
युग-प्राण !!
मानव-महा !!!
कोटिश दीप के सन्निहित उज्ज्वल तेज,
नभ-मणि-पुंज !
स्वर्णिम-शिखा !!
हिम-सर-कनक-पद्म-पराग,
परिमल भारती के वीण-सरगम के।

भीष्म-प्रण के बिम्ब !
शिव के चरण,
शत-शत यज्ञ के वरदान,
भारत-भारती के पुत्र,
कवि-कुल-कुन्ज के कादम्ब,
भू-पति हर्ष के प्रतिमान !

विकट विद्रोही
विबुद्ध विजीष।
निज पथ पथिक,
शतशः शोषितों के त्राण,
पारथ लक्ष्य के।

सिद्धि-नग के शिखर,
अविचल भीम,
गज नत हो गया लख चाल,
भागे श्वान
कण्टक सुमन में बदले,
दिशा बदली, समय बदला,
फटी बदली, अनिल बदला,

खिले सूरज मुखी के थाल—
तेरी अर्चना को।

हे कवे !
युग प्राण !!
तेरी प्रभा से ज्योतित प्रबुद्ध समाज ।
आज तेरे—
चरण छूने उतर आए गगन के नक्षत्र,
देख लो ना, टहनियाँ सब झुक गयी हैं—
फूल से श्लथ;
पर नही तुम।

ठीक ही है
आत्म-श्लाघा कब रही प्रिय !

आज पौरुष को तुम्हारे,
नमित दृग से अर्घ देने—
आ गई जनता समूची।

आस्था है तुम उन्हें
संघर्ष की नित प्रेरणा दे—
अनवरत कर्त्तव्य के प्रति
समर्पण का मन्त्र दोगे।
समर्पण का मन्त्र दोगे

● ●

कविवर सुमित्रानन्दन पंत के प्रति

•

कोमल कनक कर ब्रह्म ने
काया रची कवि पंत की।
कान्तायमी गोकुल बनी
पा चरण-रज नव कंत की।

पर्वत-शिरा नगराज को
थी युगों से दण्डित हुई।
पा गोद में कवि पंत को
नव विरद से मण्डित हुई।

प्रमुदित हुई माँ-भारती
मुख चूम उसने वर दिया।
मानस सकल कवि पंत का
नव कल्पना से भर दिया।

निर्झर बहा 'उच्छ्वास' का
'गुंजन' नया मिलने लगा।
नव 'ग्रन्थि' पुलकित हो गयी
'पल्लव' नया खिलने लगा।

झंकार वीणा की हुई
'क्रीड़ा' 'परी' थिरकी सहज।
नव 'ज्योत्स्ना' के साथ
सुन्दर 'ग्राम्या' आयी वरज।

फिर 'रज, शिखर' स्वर्णिम हुआ,
'मधुज्वाल' लौ उठने लगी।
उत्कर्ष पर आ 'उत्तरा'
युग की कथा कहने लगी।

शुभ फूल खादी के त्रिम
नव गंध जन-जन को मिली।
अरविन्द का दर्शन लिए
'अतिमा' लगी कितनी भली!

दर्शन सभी, कवि ने गहनतम्
गूँथ डाले काव्य में।
वह शब्द ध्वनि प्रेषित करी
जो श्रेष्ठ ठहरी श्राव्य मे।

व्यक्तित्व में जादू अजब—
थे केश सुन्दर सावनी।
लख मोहिनी मूरत, सहज
पानी भरे हर कामिनी।

हिन्दी जगत के चाँद
कविवर पंत तुम थे चिर युवा।
तुमसे कला-कविता, नया
परिधान नित पाती रही।

तुमने कला के साथ
'बूढ़े चाँद' को भी था रचा।
युगधर्म का निर्वाह कर
'लोकायतन' निःसृत हुआ।

हे कल्पना के गरुण!
तुम, नभ-पार में अब उड़ रहे।
हम अवनि पर बैठे तुम्हारे
सृजन का रस पी रहे।

● ●

महादेवी वर्मा के प्रति

●

सूर्य-रश्मि की ज्योति-पुंज-सी, महिमामण्डित जो सरिता थी,
सद्य: सरस्वती की छाया, वाणी ही जिसकी कविता थी,

हिन्दी की बिन्दी बन जिसने, भाषा को सिंदूर दिया था,
अट्ठाइस व्यासों की प्रतिनिधि बनकर जो आई सविता थी,
ऐसी महीयसी देवी की स्मृति को क्या सम्बोधन दूँ!
वाणी गूँगी हुई जा रही कैसे निज को उद्‌बोधन दूँ?

सन्नाटा है भाषा के वैभव के स्वर्णिम राजमहल में,
उलका जैसे गिरी किसी जमते मेले के चहल-पहल में।
बुझी वर्तिका दीप शिखा की, लुप्त हुआ सारा उजियारा
हिन्दी दिवस पर्व के पहले, सूना मंदिर हुआ हमारा।

आओ यज्ञ करें हम कोई, फिर अपनी वाणी मुखरित हो,
बीणापाणी की वीणा से अपना आंगन फिर झंकृत हो,
हरसिंगार सम, भाव झरें फिर, रजनी गंधा फिर पुलकित हो,
फिर कोई वरदान सुलभ हो, हिन्दी-कानन फिर सुरभित हो।

'रश्मि' 'नीरजा' 'सांध्य गीत' जैसी लतिकाएँ फिर सरसाएँ,
विगत 'शृंखला की कड़ियाँ' हों जागें 'स्मृति की रेखाएं'
आओ हम हिन्दी भाषा की गरिमा से परिचय करवाएँ
'दीप शिखा', 'यामा' के वैभव की गाथा सबको बतलाएँ।

● ●

वंदना का गीत

•

दलित जन पर दृष्टि जिसकी हो झुकी,
गैर का सुख देख कर जो हो सुखी।
जो समर्पित हो गरीबों के लिये,
दूसरों के दर्द से जो हो दुःखी।
वह हमारे बीच जब-जब आएगा,
थाल पूजा का सजाया जाएगा ।।

जो तिरस्कृत को पुरस्कृत कर रहा,
क्लेश जन-जन के निरन्तर हर रहा।
जो समय के चक्र को दे नव दिशा,
नित्य आशा की किरण ही भर रहा। वह हमारे बीच ।।

मात्र सेवाभाव में जो हो पला,
पंक बन जो कमल-दल को दे खिला।
पास जिसके मात्र जन-कल्याण की
योजनाओं का लगा हो सिलसिला। वह हमारे बीच ।।

बुद्ध आए एक दर्शन दे गए,
प्यार के प्रतिमान जयवर्धन हुए।
कील हाथों में जड़े, सूली चढ़े,
त्याग का संदेश ईसा दे गए।
किन्तु सबलों ने सदा शोषण किया,
विगत का इतिहास हमसे कह रहा।
आज भी लाखों करोड़ों आदमी,
तुच्छ भुनगों की तरह हैं जी रहा।
जो लिए सौगंध हो इनके लिए,
और बापू का सिपाही बन जिए। वह हमारे बीच ।।

नमन उनको जो दलित पर हों नमित,
अर्घ्य उनको जो दुःखी पर हों द्रवित,
वन्दना उनकी जो प्रण औ' प्राण से—
करें पावन उन्हें, वंचित जो पतित।
जो हमें इस पन्थ पर आलोक दे—
साम्य का ध्वज गगन में फहराएगा। वह हमारे बीच ।। •

स्नेह-सौरभ के गीत

कल्पवृक्ष या पारिजात का वैभव,
मेरे पास नहीं है।

कवि हूँ कुछ कविता का सौरभ,
आत्मजनों को अर्पित करता।

वासुदेव मैं नहीं, सुदामा हूँ,
अपने संक्रामक युग का।

मेरी गठरी में तन्दुल हैं,
तन्दुल उन्हें समर्पित करता।

सुकुमार बेटी की निंदिया

●

हे हरसिंगार के फूल ! खिलो तुम धीरे से
अब छुई मुई-सी मेरी बेटी सोती है
हे इन्दीवर तुम सम्पुट बाँधो धीरे से
मेरी बेटी अब बीज स्वप्न के बोती है।

हे पवन चलो धीरे धीरे इन गलियों में
कंधों से बादल की डोली तुम रखो दूर,
फ़ड़ फड़ा उठे न डोली का पर्दा चंचल
धरती से पग-ध्वनि कहीं न उठने लगे क्रूर।

हे मीन साँस लेना तुम अपनी बंद करो
जल खल-खल कर, मत ऊपर को आओ फिर-फिर,
हे गगन सुन्दरी केश सँवारो मत अपने
रहने दो बिन चोटी कंघी का अपना सिर।

सोने दो मेरी बेटी को, है थकी बहुत
है एक गिलहरी के पीछे दौड़ी दिन भर,
कल फिर निमकौरी लेकर उसे बुलाएगी
निज शैय्या पर उसको सो लेने दो जी भर।

● ●

पुत्र को दीक्षा

●

पढ़ो पढ़ो, पढ़ो पढ़ो,
मुझे पढ़ो, इन्हें पढ़ो,
उन्हें पढ़ो, उन्हें पढ़ो,
जो हो सके तो नित्य तुम—
स्वयं को बैठ कर पढ़ो। पढ़ो पढ़ो.......

किसी का गीत हो, पढ़ो।
पढ़ो, गज़ल किसी की हो
निबन्ध और कहानियों की
पत्रिका को तुम पढ़ो।
मगर कभी-कभी तो,
राम, कृष्ण की कथा पढ़ो।
कुरान, बाइबिल पढ़ो,
कबीर की व्यथा पढ़ो। पढ़ो पढ़ो.......

समय समय के भेद को,
समझ समझ ग्रहण करो।
सुनो सभी की बात किन्तु
तर्क कर वरण करो। पढ़ो पढ़ो.......

पढ़ोगे तुम तो चेतना
चढ़ेगी नित्य सान पर।
छुएंगे लक्ष्य तीर वे,
धरोगे जो कमान पर।
समाज में सभी तरफ़
तुम्हें मिलेंगी सिद्धियाँ।
जरा प्रयास तो करो
चरण छुएंगी ऋद्धियाँ।
इसीलिए तो कह रहा। पढ़ो पढ़ो.......

● ●

पुत्र को प्रेरणा

●

सूर्य्य की रश्मियाँ यदि नहीं दृष्टिगत,
पंथ पर एक दीपक जलाकर बढ़ो।
जो मिलें व्याधियाँ तुम उन्हें रौंदकर,
नित्य उत्कर्ष की सीढ़ियों पर चढ़ो।

चेतना आग है तुम उसे धौंककर,
मूढ़ता की ठरन को द्रवित नित करो।
धर्म की वृत्तियाँ सूखती हों अगर,
साधना के सलिल से हरित नित करो।

तुम निराशा की चादर न ओढ़ो कभी,
बुद्धि के बाँझपन को तिरस्कृत करो।
आत्म विश्वास को नित जगाते हुए,
तुम स्वयं से स्वयं को पुरस्कृत करो।

● ●

बेटी की बिदाई

•

मैं समाज की परम्परा का
अनुपूरक बन मुस्काता हूँ,
और बिदा कर बेटी घर से
दृग में आँसू भर लाता हूँ।
कैसी अद्भुत विडम्बना है !

जिसके बचपन से मैं खेला,
और घुमाया जिसको मेला,
आज अकेला उसे विदा कर
मैं मन ही मन हर्षाता हूँ।
कैसी अद्भुत विडम्बना है !

जिससे अपना मन बहलाया,
जिसका संरक्षक कहलाया,
उसके ही अब अनुरक्षण में
मैं जाने क्यों घबराता हूँ।
कैसी अद्भुत विडम्बना है !

कल तक आँगन में जो खेली
मेरे लघु आँगन की बेली
खिलते फूल उसी में लखकर
मैं जाने क्यों सकुचाता हूँ।
कैसी अद्भुत विडम्बना है !

पान-फूल सा जिसको पाला
रखा बनाकर जिसको माला
आज उसी को सौंप किसी को
तृप्ति अपरिमित मैं पाता हूँ।
कैसी अद्भुत विडम्बना है

जनक नहीं थे जनक, सुता के,
कण्व ऋषी थे, नहीं पिता थे,
किन्तु बिदा के क्षण पर देखो—
दोनों को रोना पाता हूँ

कैसी अद्‌भुत विडम्बना है।

मेरी बेटी अपनी जायी,
नित्य रही मेरी अनुयायी,
बनकर गृही, बिना गृहणी के
पाणि-ग्रहण मैं करवाता हूँ।

कैसी अद्‌भुत विडम्बना है।

मेरी व्यथा नहीं कहने की,
यह केवल अनुभव करने की,
विधि विधान मैं समझ न पाया
पर बेटी को समझाता हूँ।

कैसी अद्‌भुत विडम्बना है।

• •

बड़ी पुत्र-वधू का आवाहन्

•

आओ मेरे घर तुम आओ !
आओ मेरे आँगन आओ !
मेरी कुटिया मन्दिर जैसी
तुम उसकी तुलसा बन जाओ ।

आओ मेरे घर तुम आओ,
आओ मेरे आँगन आओ ।

जब से गयी लक्ष्मी घर की,
घर आँगन वीरान रहा है ।
क्यारी में उपजे पौधों का
वनमाली हैरान रहा है,

जल बिन मीन सरोवर में ज्यों
छाया बिन ज्यों जेठ-दुपहरी,
सरिताओं के तल की माटी
ज्यों नित फट-फट होती गहरी
मेरे अन्तर मन की काया
त्यों जर्जर होती आयी है,
रेत-रेत मैं चला बहुत दिन
धार सलिल की अब पायी है ।

तुम अपने पावन चरणों में,
गंगा की शीतलता लाओ ।

जाने कितने चौक पुराए
पूजा के नैवेद्य चढ़ाए,
पाटल-दल, चन्दन, अक्षत, ले
जाने कितने देव मनाए,
तब यह घड़ी दिखाई दी कि
चरण भवानी के घर आए,

तिमिर-प्रताड़ित-आँगन में तुम।
घर की 'आभा' बनकर आओ ।।

दशरथ हूँ मैं नहीं, और न—
कनक-महल का मैं आवासी,
छोटी-सी कुटिया को पाकर
उसका ही बन गया निवासी।
सन्यासी - सा मेरा जीवन
मृग - छौने से तनय हमारे,
गंगा - जमुना के संगम पर
निरख रहे हैं चरण तुम्हारे।

राम सरीखा 'रतन' एक है।
तुम उसकी सीता बन आओ ।।

विष्णुदेव की महालक्ष्मी, शंकर की गौरी बन आओ,
नल की दमयन्ती, सावित्री सत्यवान की, बनकर आओ।
अनुसुइया की पावनता ले, नागर की राधा बन आओ,
तुम नारद की वीणा जैसी, झंकृत होकर गाती आओ।

मेरा आँगन सूना-सूना।
नूपुर तुम इसमें छनकाओ ।।

● ●

दूसरी पुत्र-वधू का आवाहन

देवि अपने चरण धर कर,
भवन मेरा भुवन कर दो।

खेलता है जहाँ वैभव, वह भवन मेरा नहीं है,
जागता है जहाँ तामस, वह भवन मेरा नहीं है,
जहाँ होती है तपस्या, उस कुटी का रूप है यह;
अवतरित हो इस कुटी में, तप हमारा पूर्ण कर दो।

देवि अपने चरण धर कर,
भवन मेरा भुवन कर दो।

भावनाओं की चिरइया, शुष्क आँगन में नहाती,
और कोयल कल्पना की, मंजरी का गीत गाती,
जेठ से तपते दिवस हैं, सावनी रसधार भर दो;
स्वप्न जो मैंने सँजोए, तुम उन्हें साकार कर दो।

देवि अपने चरण धर कर,
भवन मेरा भुवन कर दो।

नेह का घृत गात में ले, कनक जैसा दीप मेरा,
कठिन पहरा है निशा का, तिमिर ने है गहन घेरा,
वर्तिका बन दीप की, इस दीप का शृंगार कर दो;
स्नेह-सज्जित किरण से तुम प्यार का आलोक भर दो।

देवि अपने चरण धर कर,
भवन मेरा भुवन कर दो।

राम के लोचन सरीखा एक है 'राजीव' सुन्दर,
दृष्टि जिसकी ढूंढ़ती है 'मधु'-भरा-मनुहार मनहर,
माण्डवी का रूप धर कर, तुम इसे भी भरत कर दो;
जिस कुटी में रह रहा हूँ, तुम उसे साकेत कर दो।

देवि अपने चरण धर कर,
भवन मेरा भुवन कर दो।

रूपकों में बाँधने को, बहुत सारी हैं कथाएँ,
तुम स्वयं विदुषी, तुम्हें कर्त्तव्य कैसे हम सिखाएँ,
जो तुम्हारे से अपेक्षित हो, वही आदर्श धर दो;
और अपनी साधना से, अमर यह सम्बन्ध कर दो।

देवि अपने चरण धर कर,
भवन मेरा भुवन कर दो।

● ●

पौत्र-पौत्रियों को उद्बोधन

आओ बच्चों तुम्हें सिखाएँ
बातें सच्चे ज्ञान की।
मानव जीवन तुमने पाया,
है लीला भगवान की।
पढ़ लिखकर गुणवान बनो सब
बात करो विज्ञान की।
बुद्धिमान तो बनो किन्तु मत
करो बात अभिमान की।

बनो धीर गम्भीर सरल तुम,
मानवता हित पियो गरल तुम,
न्यायी बनो और उत्साही,
राह लगाओ भटके राही,

योगी बनो, बनो मत रोगी,
साधक बनो, बनो मत भोगी।
खरे बनो पर बनो न खारे,
मधुर वचन हो सदा, तुम्हारे।

निन्दक, कुटिल, दुष्ट मत होना,
बात-बात पर रुष्ट न होना।
चापलूस, मनहूस न होना
और कभी कंजूस न होना।

दीन दुःखी पर सदा द्रवित हो
इच्छा रखना दान की।
जाति-पाँति से ऊपर उठकर
करो बात इन्सान की।
आओ बच्चों तुम्हें सिखाएँ
बातें सच्चे ज्ञान की।

जन्म दिवस पर

आशीर्वाद

•

मेरे आँगन की माटी में---
हैं व्याप रहे जितने भी कण,
उतने पुष्प समर्पित तुमको
जन्म दिवस की इस बेला पर।

कवि-मानस के कानन-तरु में---
जितने अब तक पात लगे हैं,
उतने फल हैं तुम्हें समर्पित
जन्म दिवस की इस बेला पर।

वृन्दावन के जमुना तट पर---
तुलसी दल जितने विकसे हैं,
उतने वर्ष-निरोगी तुमको
अर्पित करता इस बेला पर।

मेरी दृष्टि-परिधि के अन्दर---
जितने उडुगण अम्बर पर हैं,
उतने दीप समर्पित तुमको
जन्म दिवस की इस बेला पर।

लालच तुमको भ्रमित करे ना,
अंकुश रहे क्रोध के ऊपर।
जगे लालसा निज सीमा तक,
मद का मर्दन करो निरन्तर।
सुयश तुम्हारा, छुए गगन को,
बढ़े प्रतिष्ठा वसुन्धरा पर,
कीर्ति तुम्हारी पर्व मनाए,
वर्ष-वर्ष तक इस बेला पर।

••

कल्पित जी की अन्य प्रकाशित पुस्तकें

काव्य	—रवीन्द्र गीतांजलि (पुरस्कृत) इन्द्रबेला और नागफनी, अनुभूतियों की अजन्ता (पुरस्कृत), आग लगा दो, यह भारत देश हमारा (बाल गीत)।
उपन्यास	—चारुचित्रा (पुरस्कृत), शुभ्रा, युगबोध, वैज्ञानिक गोरिल्ला, स्वराज जिन्दाबाद।
कहानी-संग्रह	—राख और आग, काला साहब गोरी मेम, सितारे अंधेरे के, टुकड़े जिन्दगी के (पुरस्कृत)।
साहित्यिक इण्टरव्यूज	—साहित्य के साथी, साहित्य साधिकाएँ, संयुक्त संस्करण—साहित्यकारों के संग।
नाटक	—संत्रास, अपूर्ण सम्पूर्ण (प्रेस में)।
पत्र-साहित्य	—रवीन्द्र पत्रांजलि, पत्रों के दर्पण से शरत् चन्द्र, पत्र-लेखन-कला।
विविध	—बापू के विचार, राजकाज हिन्दी संदर्भिका।

कुछ उपलब्धियाँ

- रवीन्द्र शताब्दी पर गीतांजलि का पद्यानुवाद। उत्तर प्रदेश शासन द्वारा १९६१ में पुरस्कृत।
- अनुभूतियों की अजन्ता (छन्दमुक्त काव्यकृति) हिन्दी संस्थान, लखनऊ, द्वारा १९७७ में अनुशंसित।
- 'चारुचित्रा' उपन्यास उ० प्र० हिन्दी संस्थान द्वारा १९८३ में प्रेमचंद पुरस्कार से अनुशंसित।

- सितारे अँधेरे के (कहानी-संग्रह) उ० प्र० द्वारा १९८७ में यशपाल नामित पुरस्कार से स
- कल्पना, अपरा तथा पुष्कल नामक मासिक पत्रिकाओं का सम्पादन।
- इलाहाबाद की 'अभिषेक श्री' संस्था द्वारा १ साहित्यकार सम्मान समारोह में अभिनंदित।
- लखनऊ के 'श्री पर्व' १९८८ में 'साहित्य श्री सम्मानित।
- सात वर्षों से अ० भा० हिन्दी प्रतिष्ठापन मंच से हिन्दी भाषा की प्रतिष्ठा में अनेक अभियान